मासिक—

मानव मन्दिर

संरक्षक :

परम दयाल पं० फकीरचन्द जी महाराज

सम्पादक :

सेठ दुर्गादासजी

॥ राधास्वामी ॥

प्राक्कथन

यह संतमत लेखमाला नामी पुस्तक श्री गोपीलाल जी 'कृषक', रिटायर्ड डायरेक्टर आफ एग्रीकल्चर, ने लिखकर मुझे भेजी। मैं संसार को समय के संत सतगुरु की हैसियत से कुछ कहना चाहता हूं। इस श्री गोपीलाल ने वर्षों हुए मुझको पत्र लिखा था कि वह परमार्थ का जिज्ञासु है और नामदान चाहता है। उत्तर में मैंनें इसको लिखा कि मैं किसी को नाम नहीं देता। जहां से तुम्हारी इच्छा हो नाम ले लो। मुझे हजूर दातादयाल जी महाराज ने राधास्वामी नाम और गुरुस्वरूप का ध्यान बताया था। किन्तु, मेरे साहित्य को पड़ते रहना ताकि तुम भटक न जाओ। उसने मेरे पत्र को नामदान समझ लिया और साधन में लग गया। तीन वर्ष की अवधि में उसने मुझे छः सात पत्र लिखे। उनमें उसने मेरी पुस्तकों का हवाला देते हुए कई प्रश्न किये। तीन वर्ष के पश्चात दशहरे के सत्संग पर जो होशियारपुर

में हुआ, वह व्यक्ति नौ सेब लेकर मेरे पास आया और उसने मुझे अपनी एक डायरी दिखायी जो वह प्रतिदिन अभ्यास के बाद लिखा करता था। मैं उस डायरी को पढ़ कर दंग रह गया। मेरा रूप उसके अन्तर प्रकट होकर भिन्न,भिन्न सोपानों से उसे गुजारता रहा। मैंने उसी समय पांच पैसे और एक नारयल लेकर उसकी गोद में डाल दिये और कहा नामदान दिया करो और सत्संग कराया करो। आगे का अनुभव तुमको हो जावेगा। ऐ भारतवर्ष के धार्मिक और पान्थिक दुनियावालो! मैं स्पष्टपूर्वक कहता हुं कि उसने जो कुछ हासिल किया वह उसकी अपनी ही लगन, अपनी ही आशा और अपना ही भाव था। सुनो हुजूर दाता दयाल जी महाराज ने ईस्वी सन् १९३३ में मुझको यह आदेश दिया था कि चोला छोड़ने के पहले शिक्षा को बदल जाना। उस समय ऐसा आदेश देने से पहले उन्होंने दो उदाहरण दिये थे। एक भील और द्रोणाचार्य का। जिस कार्य को अर्जुन नहीं कर सका उसको भील ने कर दिया। जब उससे पूछा गया कि तेरा गुरु कौन है? तो उसने जबाब दिया द्रोणाचार्य। पांडव उसको लेकर द्रोणा-

चार्य के पास गये। द्रोणाचार्य ने इन्कार किया और कहा कि वे उसके गुरु नहीं थे। वह द्रोणाचार्य को जंगल में अपने स्थान पर ले गया और वहां उसने द्रोणाचार्य की मूर्ति दिखाई। उसने कहा कि मैं आपकी इस मूर्ति के सामने बैठ जाता हूं। आप मुझे हिदायत करते र ते हैं। यह क्या है ? गोपीलाल कृषक का उदाहरण और भील का उदाहरण यह साबित करता है कि इन्सान की ध्यानशक्ति में बहुत बड़ी ताकत है। गुरु नेष्ठा है, आदर्श है। द्रोणाचार्य ने भील को कहा कि तुम मुझको गुरु मानते हो तो दक्षिणा दो। उसने कहा जो माँगो। द्रोणाचार्य ने कहा कि अपने दायें हाथ का अंगूठा काटकर मुझे दे दो। क्यों ? वह राजनैतिक पथ था। भीलों को बड़ने नहीं दिया जाता था। ऐसे ही हरेक शिष्य को यह ज्ञान हासिल करने के बाद गुरु-दक्षिणा देनी पढ़ती थी। मैं क्या कर रहा हूं ? यह गुरु-दक्षिणा ही तो दे रहा हूं। जो शिष्य ऐसा नहीं करता वह लाख सिद्धि हासल कर जाय उसका अहंभाव नहीं जाता। कबीर साहिब ने कहा है।

कामी तरे क्रोधी तरे पापी तरे अनन्त।
आन उपासक कृतघ्न तरे न नाम रटन्त॥

हजूर दाता दयाल जी महाराज ने दूसरा उदाहरण यह दिया था कि एक अछूत जाति का आदमी किसी ब्राह्मण गुरु के सत्संग में नामदान लेने के लिए गया। चूंकि, पिछले जमाने में ब्राह्मण अछूतों के सामने नहीं आते थे, उसके ब्राह्मण गुरु ने अछूत को आते हुए देखकर कहा—"दूरं, दूरं, दूरं।" (परे हटजा, परे हटजा, परे हटजा)। वह अछूत वापस चला गया। जब दूसरे वर्ष सम्मेलन हुआ तो हर एक शिष्य ने भोजपत्र पर अपना अनुभव लिखकर दिया। गुरु ने जब उसका पत्र पढ़ा तो पूछा कि तू कौन है? लोगों ने कहा कि महाराज! अछूत है। गुरु ने कहा कि कुछ परवाह नहीं लाओ। उन्हों पूछा कि तेरा गुरु कौन है? आप हैं। मैंने तुमको क्या उपदेश दिया? उसने कहा कि जब पिछले सम्मेलन में मैं नाम लेने के लिए आया था तो आपने कहा "दूरं, दूरं, दूरं।" (दूर हो, दूर हो, दूर हो)। गुरू ने पूछा, "तुमने क्या समझा?" जिस्म से दूर, मन से दूर और आत्मा से दूर, मैंने साधन किया। जो अनुभव मैंने किये वह आपके चरणों में भेंट किये, गुरु ने उसको छाती से लगा लिया।

यह दो उदाहरण देते हुए हजूर दाता दयाल जी महाराज ने सन् 1933 में मुझे कहा था कि फकीर। चोला छोड़ने से पहले शिक्षा को बदल जाना। मैंने अपने निजी अनुभव के आधार पर ये अनुभव कि हकीकत और असलियत क्या है श्री गोपीलाल, दयालदास, कमालपुर वाली माई या दीगर सत-संगियों के अनुभव से कि मेरा रूप उनकी मदद करता है और मुझे पता तक नहीं होता, क्या मेरे ध्यान से उनको कुछ मिल गया ? इन सब को सच्चा ज्ञान दाता, इन सब को सतगुरु का रूप मान कर नमस्कार करता हूं। कबीर साहिब ने भी कहा है :—

शिष्य नवें गुरु को यह जाने सब कोय।
गुरु नवें शिष्य को कोई बिरला ही होय।

मेरे इस लेख से लोग यह समझेंगें कि मैं गुरुमत का खण्डन करता हूं और गुरुमत की कोई प्रधानता नहीं है। संतों के मार्ग में और गुरु नानक साहेब की वाणी में हर जगह "पूरागुरु पूरागुरु" के बचन मिलेंगे। पूरागुरु वह है जो इन्सान को पूर्ण ज्ञान देकर उसको निर्बन्ध कर दे बाहर के गुरु का भी बन्धन है और इस बन्धन को कोई निष्कपट,

निस्वार्थ और सच्चा कामिल इन्सान ही पूरा कर सकता है। इसलिए मैंने गुरुमत को साफ कर दिया है। हजूर दातादयाल जी महाराज ने अद्भुत उपासना योग में अंतिम पृष्ठ पर लिखा है कि जब सतलोक में बीन बजने लगे, प्रकाश हो जावे, उस समय किसी सतगुरु की खोज करो। मैं वैसा सतगुरु हूं। मैं आशा करता हूं कि लोग मेरे भाव को समझेगें। मैंने इस रहस्य को जो गुप्त था क्यों खोला? केवल इसलिए कि इस समय गुरुमत का जोर है। हजारों गुरु उदर पूर्ति और मान प्रतिष्ठा के लिए कार्य कर रहे हैं। वे भी धन्य हैं। प्रारम्भ में किसी न किसी रूप में सहारा देते हैं। मगर कोई अंतिम लक्ष्य तक नहीं पहूंचता। गृहस्थी निबल, अबल और अज्ञानी हैं। उनसे धन और इज्जत उनको अज्ञान में रखकर लीजा रही है। गुरुओं के आपस में झगड़े, गद्दियों के लिए आपसी झगड़े और मुकदमे बाजियां होती रहती हैं और जिस गर्ज के लिए संतों का प्राकट्य हुआ था, वह पूरी नहीं हो रही हैं। इसलिए मैंने गुरु आज्ञावश कि फकीर ! चोला छड़ने से पहले

गुरु बिन ज्ञान न उपजै [illegible]
गुरु बिन संशय ना [illegible]

श्री गु[illegible] [illegible] जी ([illegible])

प्रतिलिपि पत्र दिनांक :–6-2-75 जो श्रीं हजूर पं० फकीर चन्द जी महाराज द्वारा कृषक को लिखा गया ।

सतगुरु स्वरूप श्री कृषक जी महाराज, राधास्वामी !

पत्र पढ़ा, आप सब लोगों से यह मैं धर्म से कह रहा हूं कि मैं अनुभव करता हूं कि आप मुझ से बहुत ही अच्छे हैं । कम से कम इतना तो आपको अनुभव हो गया है - जिस से आपको शान्ति और तस्कीन मिल गई ।

मुझे न तो अभ्यास में शान्ति मिली न शब्द योग से ही शान्ति मिली— हां मैंने अपने कर्म में आनन्द, प्रसन्नता, उत्साह अवश्य प्राप्त किया । मुझे मिलना क्या था ?

यह मिला कि मैं एक चेतन का बुलबुला हूं इतनी बड़ी भारी सृष्टि, लोक, लोकान्तर, ब्रह्मांड और जो वहां कायनात हैं, जब उस पर विचार करता हूं तो मेरी हस्ती ही क्या है ? एक छोटा सा जर्म । इस जर्म

में एक मैंपना आ गया उसी का नाम माया और काल है। इसी अहं में आकर मैं दुख अनुभ करता, सुख अनुभव करता, अभ्यास करता, ध्यान करता था और शेखचिल्ली की तरह बड़ी बड़ी स्कीम्स, योजना, खयाल बड़े बड़े उदगार किये। अब क्या हाल है ?

दाता का शब्द है।

पिलादे भक्ति का ऐसा प्याला ममत्व मैं अपने मनका खोदूं।
न बुद्धि रहे न सुधी रहे, और अहंपना सारा मन का खोदूं।
जपूं तपूं और न भजूँ न सुमरूं, न योग युक्ति के पंथ दौड़ूँ।
न नाम की माला हाथ में हो, हिये की माला का मनका खोदूं।
पिला दे—
वैराग्य क्या जिसमें राग आये, वह त्याग क्या त्याग में फंसाये।
न बंध न मुक्ति का हो खटका, विवेक घर और बन का खोदूं।
न दुख की दुविधा न सुख की चिन्ता, न चित की दुचिता का नाम हो किन्चित।
न ज्ञान और न ध्यान की हो इच्छा, विचार साधन यत्न काखोदूं
न द्वन्द निरद्वन्द का हो झगड़ा, न द्वैत अद्वैत का हो बखेड़ा।
झुका के सिर राधास्वामी पद में विचार तक दासपन का खोदूं।
पिला दे—

इस मन्जिल पर आ रहा हूं, चूंकि इस मंजिल पर पहुंचाने वाले हैं तो दातादयाल, उनका हुक्म माना आप सतसंगी तो मुझे गुरु मानते हैं मैं आपको गुरु

मानता हूं। इसलिये मैं आप लोगों की इज्जत, मान, श्रद्धा और विश्वास के साथ करता हूं। आप की पुस्तक को मानवता मंदिर छपवा देगा। आप लोग जो लोगों को नाम देते हैं। सतसंग करते हैं, प्रसाद देते हैं, आप लोग गुरुमुख हैं :—

गुरुमुख क टिक जीव उबारे।

आप लोगों के काम से जीवों को सतमार्ग पर चलने का उत्साह, श्रम, व आशावादी बनने व जीवन गुजारने का मार्ग ही मिलता है। यह किताब मैं छपवा दूंगा। यह पत्र जो मैं आपको लिख रहा हूं, यह भी उसमें छपवाऊंगा। सुखी रहो, कृषक!

आप लोगों से मैंने अपनी जिन्दगी की दौड़ धूप खतम की है, यद्यपि शरीर बाकी है। मैं सच्चे दिल से चाहता हूं कि अपनी जात में वापिस चला जाऊ। वह आखिरी मुकाम है।

सुरत हुई अतिकर मगनानी।
पुरुष अनामी जाय समानी॥

आपका

हस्ताक्षर

श्री हजूर पं० फकीरचन्द जी महाराज

दो खत भी छपवा दें, यदि आप चाहें तो मानव मंदिर यह काम कर देगा :

आपका

हस्ताक्षर

श्री हजूर पं० फकीरचन्द जी महाराज

॥ श्री सतगुरु देवायनमः ॥

संतमत लेखमाला

अथवा

साधन की सुगम विधियां

(प्रथम भाग)

प्रस्तुतकर्ता :

श्री हजूर परमसंत परम दयाल पं० फकीर चन्द जी महाराज, संचालक मानवता मन्दिर, होशियारपुर, पंजाब, का एक किंकर शिष्य

आचार्य गोपी लाल कृषक उर्फ दयालानन्द कृषक, निवासी ग्राम खंडेहा, ज़िला अलीगढ़ (उत्तर प्रदेश) व साकिन हाल बंगला नं० ४ (अ), मेवाड़ टैक्सटाईल मिल्स लिमिटेड, भीलवाड़ा (राजस्थान)।

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

विषय सूची

पु. सं.	विषय		पृष्ठ सं
1.	मन को मारना. स्थिर करना या रोकना	—	3
2.	संतमत का प्रचारक कैसा हो ?	—	8
3.	कथनी. करनी व रहनी	—	9
4.	नाम की भक्ति	—	21
5.	सुरत शब्द योग के साधन में सफलता	—	27
6.	संसार में फैले हुए अनेकों मत मतान्तर व सम्प्रदायों की विचार धाराएं	—	45
7.	पांच कोष	—	51
8.	रूहानियत बनाम इन्सानियत	—	54
9.	पूर्ण शरणागति	—	57
10.	घर में शान्ति	—	60
11.	इस आफत भरी दुनियां में चैन से कैसे रहा जाय (दो मित्रों की बातचीत)	—	64
12.	संतमत के साधन का रहस्य	—	67
13.	मन चंचल कहा न माने रे मैं कौन उपाय करूं ?	—	68
14.	इष्ट व पूर्ण शरणागति	—	81
15.	सुख, दुःख, आनन्द और शान्ति	—	89

16.	चार प्रकार की मुक्ति व चार प्रकार की भक्ति	—	95
17.	संसार में पांच प्रकार के भक्त	—	100
18.	तीन प्रकार के ज्ञान	—	105
19.	नकल खत जो आचार्या मीरा बहन को दिनांक २५-२-७४ को लिखा गया	—	110
20.	क्या गुरु धारण करना जरूरी है ?	—	119
21.	न सुख ही मिला न कोई सुखी	—	127
22.	मन की चंचलता हरना अथवा मन को जीतना या बस में करना	—	130
23.	सुरत नहीं चढ़े कहा करिये ?	—	136
24.	साधन में सहायक व बाधक प्रतिक्रियाएं	—	146
25.	संत तब तक भय करें जब तक पिंजर साथ	—	156
26.	सार शब्द या शब्द ब्रह्म	—	166
27.	क्या वह गुरु जो मुक्ति दिलाने का दावा करता है, वह रोटियां नहीं दे सकता ?	—	169
28.	मौज से होता सारा काम	—	174
29.	साधन के लिये उपयुक्त समय, जगह, आसन, भोजन तथा तरीके	—	179
30.	क्या जिन्दगी में एक ही गुरु धारण करना चाहिये या अनेक ?	—	192
31.	संतमत सब मतों से निराला है व आला है	—	205
32.	कालमत व दयालमत	—	207

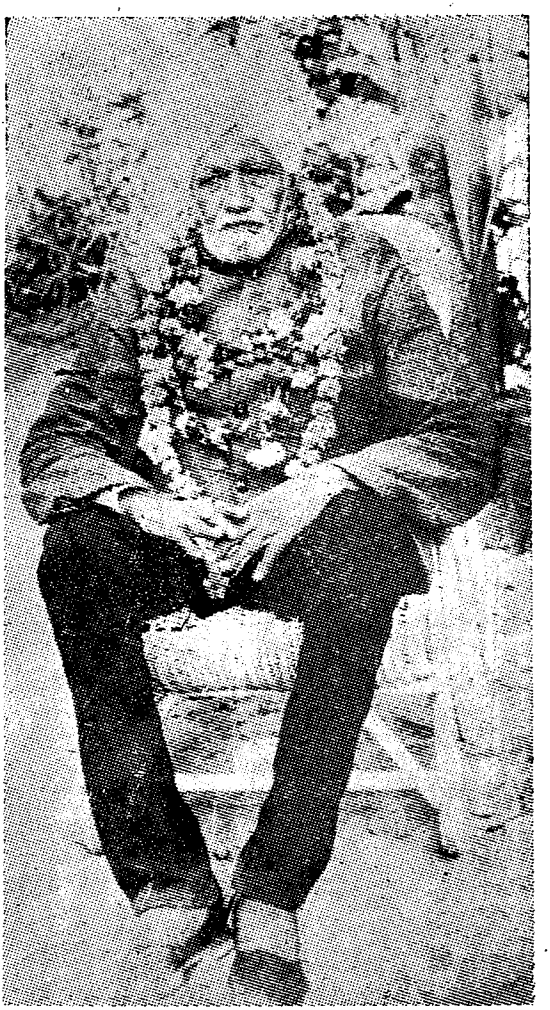

आचार्य गोपीलाल कृषक
उर्फ दयालानन्द कृषक

भूमिका

यह लेखमाला मैंने अपने पौत्र प्रियवर तेजेन्द्र मणि गुप्ता, चीफ इन्जिनियर, मेवाड़ टैक्सटाईल मिल्स लिमिटेड, भीलवाड़ा (राजस्थान) की इच्छा पूर्ति के लिए उन्हीं को प्रस्तुत की है। उनकी इच्छा थी कि मैंने गृहस्थ में रह कर कभी गिरते कभी उठते सुरत शब्द योग का जो साधन किया है, और उस साधन से जो निजी अनुभव प्राप्त हुआ है उसका एक नमूना उनके लिये लेखमाला के रूप में छोड़ दूं। मैंने इस लेखमाला में वे ही बातें लिखी हैं जो मेरे अनुभव में सन् १९३३ से आज की तारीख १२ सितम्बर सन् १९७४ तक आई हैं। परन्तु मुझे दावा नहीं कि मेरा अनुभव रुपये में सौलह आना भर सत्य है। फिर भी इतना तो लिखना अनुचित नहीं समझता कि मेरे अनुभव की बहुधा पुष्टि सन्तों की वाणियों से, प्रवचनों से व लेखों से होती है। इसलिए सम्भव है कि साधक महोदय या महोदया जो गृहस्थ में रह कर साधन

सुरत या तव्जह ध्यान शक्ति के आये बिना हलचल नहीं कर सकता है। जैसे :—

पर सत्ता आये बिना, मनुवा करे न काम।
ज्यों बिजली आये बिना, बल्ब रहे बेकाम॥

इस कथन की पुष्टि में हमारी गहरी नींद अथवा सुसुप्ति की मिसाल दी जा सकती है, जबकि हमारी सुरत कुदरतन दसवें द्वार के आगे यानि महासुन्न में पहुंच जाती है। अगर मन में कोई अपनी शक्ति होती तो मन को इस दशा में भी खटपट करनी चाहिए थी। किन्तु वह ऐसा नहीं करता है।

मन और सुरत का भेद

हमारे शरीर में वैसी ही जैसी कि संसार में होती है अनगिनत शक्तियां हैं जिसमें से एक सुरत दूसरा मन खास माने रखता है। पर इन दोनों में ज़मीन आसमान का अन्तर है। मन के सुपुर्द कुदरत ने इतने काम कर रखें हैं, जैसे कि हमारे शरीर की रचना करना, व ज्ञान इन्द्रियों द्वारा महसूस करके मन के स्वाभाविक गुण काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार की प्रेरणा देकर अपना कर्त्तव्य कर्म

निर्णय कराने के लिये हां और ना दोनों पक्षो की ओर से जज रूपी बुद्धि के सामने मुकदमा पेश कर दोनों पक्षों की ओर से वकालत करना तथा बुद्धि के निर्णय दे देने पर उस कर्म को ज्ञान व कर्म इन्द्रियों द्वारा करवा देना तथा उसके फल को देखकर दुःखी होना या सुखी होना तथा स्थूल शरीर की हालतों की सूचना सूक्षम शरीर, कारण शरीर, और महाकारण तक पहुंचाना और उन शरीरों की अवस्था की सूचना स्थूल शरीर को देना तथा मन अनुकूल या प्रतिकूल संसार को देखकर दुःखी और सुखी होना तथा जिन्दगी कायम रखने के लिए संसार में संर्घष करके जरूरी सामान जुटाना और जुटाने का ज्ञान प्राप्त करना तथा इसकी रक्षा करना। वगैराह वगैराह।

इसलिये जब हमारी सुरत मन के दायरे में आकर उसे कार्यशील बनाती है तो हमारा मन ऊपर लिखे कार्यों में लिप्त हो कर डांवा डौल अथवा चंचल हो उठता है अथवा एक जगह नहीं ठहरता है। तभी तो कुछ थोड़े से महापुरुषों को छोड़ संसार के सभी वर्गों के लोगों की यह शिकायत

हमेशा बनी रहती है कि 'मन चंचल कहा न माने रे मैं कौन उपाय करूं,' जबकि सुरत एक समय में दो जगह कभी नहीं रह सकती। यह सुरत का स्वाभाविक गुण है और दूसरा स्वाभाविक गुण यह है वो शब्द और प्रकाश तथा रूप की ओर खिंचती रहती हैं और तीसरा मुख्य सुरत का गुण यह है कि जहां जितनी देर वो जम जाती है वहां उतनी ही देर को उसी का स्वरूप बन जाती है। अगर मैं गलती नहीं करता तो संतों ने सुरत के इन्हीं स्वाभाविक गुणों को व स्वरूपों को समझ करके संत मत की नींव डाली है और मन से सुरत को निकाल कर मन को बेकार करने के लिये ही गुरु मूर्ति का ध्यान करने का साधन बतलाया है कि 'ध्यान मूलम् गुरु मूर्ति'। मन को क्रिया हीन बनाने के लिये यानी उसकी चंचलता हरने के लिए जरूरी है कि सुरत को किसी दूसरे केन्द्र पर जमाया जाय यानी रूप या प्रकाश या शब्द पर जमाया जाय जैसे कि हम किसी बच्चे के गिर जाने पर जो उसकी सुरत दुःख महसूस कर रही है कोई अच्छा खिलौना दिला कर या सांकल बजा कर या चन्दा बाबा दिखाकर उसके दुःखी मन

से सुरत को हटा कर उसका दुःख भुला देते हैं अथवा उस लड़के के मन को बेकार बना देते हैं। शायद इस मन की बेकारी को ही लोग मन को रोकना, बश में करना या एकाग्र करना कह देते हैं जबकि वास्तव में इकट्ठी होती है सुरत किसी रूप या शब्द में और शायद इसीलिये सार बचन में लिखा हैं कि :—

गुरु राखो हिरदे माहीं।
तो मिटे काल परछांहीं॥

काल की परछाई है मोटी माया अथवा स्थूल जगत और झीनी माया यानि ख्याल की दुनिया। इसलिये मैं तो अपने लिये व दूसरों के लिये मन की चंचलता को दूर करने के लिये गुरु मूर्ति का ध्यान सबसे उत्तम समझता हूं। आजकल के एक शायर ने भी कहा है कि :

चिन्तायें जब तुझे सतायें एक काम क्यों नहीं करता।
चिंता से चिंता को काट दे गुरु के चिन्तन में लग जा॥

नोट :—इसकी पूरी व्याख्या के लिये पढ़िये पुष्प नं० १३, २१ व २२।

पुष्प नं० २

संत मत का प्रचारक कैसा हो ?

जनता, जिसमें सौ में से निन्यानवे से कहीं ज्यादा गृहस्थ जन होते हैं इन लोगों में प्रचार करने के लिये मेरी तुच्छ बुद्धि के अनुसार प्रचारक ऐसा होना चाहिये कि :—

१. जिसने गृहस्थ में रह कर सुरत शब्द योग द्वारा सभी सोपानों को पार कर सार शब्द को सुनते सुनते अशब्द गति प्राप्त कर अनामी पुरुष का अनुभव किया हो और अब सतपद में रहता हो यानि अलख अगम के प्रकाश व शब्द को देखता व सुनता हो।

२. और अब भी गृहस्थी में रह कर फारिग उलवाली (गृहस्थी की झंझटों से मुक्त) का जीवन व्यतीत कर रहा हो यानी अपने शरीर की जरूरत की चीजें अपने परिवार वालों की मदद से व सहयोग से आसानी से प्राप्त कर लेता हो या पैंशन पाता हो और साल में कम से कम तीन महीने

प्रचार के लिये निकाल सकता हो और प्रचार करते हुये सतसंगियों से सिवाय सफर खर्च के और कोई वस्तु लेने की आशा न रखता हो।

३. निर अहंकार, परमार्थी तथा यथार्थ वक्ता हो, प्रिय वचन बोलने वाला हो और दीन गरीब स्वभाव वाला हो तथा स्वार्थ लोलुप न हो अथवा लोभी और क्रोधी व कामी न हो और किसी पूर्ण संत की आज्ञानुसार उसी के नाम पर दान लेता हो और मानवता के नियमों को पूरी तरह पालन करता हो, जो कि इस प्रकार है।

१. शरणागति। २. शुभ संकल्प।
३. क्षमा। ४. प्रेम।
५. निष्काम कर्म। ६. ब्रह्मचर्य पालन।

पुष्प नं० ३

कथनी, करनी व रहनी

कबीर साहिब की वाणी है कि :—

ज्ञान समझना और है, करनी रहनी और।
जाकी रहनी बन गई, लगे ठिकाने ठौर॥

करनी करे सो पूत हमारा, कथनी कथे सो नाती।
रहनी रहे सो गुरु हमारा. हम रहनी के साथी॥

हम यानी हमारी सुरत अनामी धाम से आई है और वह तभी अनामी धाम वापस जा सकती है जबकि हम अपनी रहनी ठीक ठीक बना लेते हैं। रहनी के चार अंग यानि पाये हैं। अगर एक भी अंग भंग रहता है तो कहा जायगा कि रहनी में कमी रह गई है। ऐसी लंगड़ी रहने वाली सुरत अनामी धाम नहीं पहुंच सकती है।

रहनी के चार अंग इस प्रकार हैं :—

१. तन का सुख। २. मन का सुख। ३. आत्मानंद। ४. जोवन मुक्त अवस्था यानि जिन्दगी को ऐसे ढंग से बिताना कि तन का सुख मिले, मन का भी सुख मिले, आत्मानंद मिले, जीवन मुक्त अवस्था भी प्राप्त हो।

१. तन का सुख : सभी चाहते हैं चाहे कोई साधक हो, सन्त हो, गरीब हो, अमीर हो, विद्वान हो, मूर्ख हो, कोई भी हाथ उठाकर कह नहीं सकता कि उसे तन का सुख नहीं चाहिये। तन का सुख पाने के लिये जिन्दगी भर संसार से सम्बन्ध कायम

रखना पड़ता है। क्योंकि तन के सुख की सामग्री संसार में जहां तहां बिखरी हुई होती है और उसे इकट्ठा करने के लिये तरह तरह के धन्धे जैसे खेती व्यापार, नौकरी वगैराह करने पड़ते हैं। जो मनुष्य जितना ही ज्यादा व्यापार कुशल व व्यवहार कुशल होता है उतनी हो ज्यादा तन के सुख की सामग्री इक्टठी कर सकता है।

व्यापार कुशल. व्यवहार कुशल, नर जग में रह सुख पाते हैं
ममता से हीन मनुज. नित नये नये दुःख उठाते हैं।

२. मन का सुख :—तन का सुख पाने के लिए मनुष्य संसार में विचरता हुआ अथवा संघर्ष करता हुआ तन का सुख तो पा जाता है परन्तु मन का सुख खो बैठता है और संसार में बसने वाली चिंतांओं का शिकार हो जाता है और ये चिंताएं मन के भारी दुःख का कारण बन जाती हैं अथवा इन चिंताओं के कारण संसार में विचरने वाले संत लोग भी व्याकुल हो कर गले का फंदा समझने व कहने लगते है। कबीर साहब संसार में यानि माया में विचरते हुए कहते है :—

कबीर माया पापिनी, फन्द ले बैठी हाट।

जीवन पूर्ण वैरागी होकर काटता हो या पूरी तरह फारगुलबाल होकर गृहस्थ में रह कर काटता हो। आजकल के जमाने में पूरा वैरागी होना तो असम्भव सा प्रतीत होता है या यों कहिये कि मैं पूरा वैरागी न हो सका तो मुझ पर तो कुल मालिक की दया से और अपनी संतानों के सतभाव से व सहयोग से फारगुलबाली का जीवन गृहस्थ में रह कर बिता रहा हूं और यह भी पूरी तरह समझ में आ गया है कि फारगुलबाली का जीवन बिताने के लिये गृहस्थ में रह कर बिता रहा हूं। यह भी पूरी तरह समझ में आ गया है कि फारगुलबाल होकर जीवन बिताने के लिये गृहस्थ में रह कर सुमिरन, ध्यान भजन करते रहना और ज़माने के अनुसार उचित मात्रा में संतान पैदा करना व उनको अपनी रोटी आप कमाने योग्य बनाना तथा सत्गुरु की भक्ति सिखाना अत्यन्त आवश्यक है।

जीवन मुक्त अवस्था में रहने वाली सुरत के साथ जब तक यह चोलाः (शरीरः) जिस में मन और उसके साथी काम, क्रोध, लोभ, मोह अहंकार बसे हुये हैं कभी कभी ऐसे ख्यालात उठते हैं कि

इस अवस्था से पतन सा हुआ महसूस होता है। निज-अनुभव के आधार पर जब मैं इस अवस्था यानी जीवन मुक्त अवस्था में होता हूं, कभी कभी बहुत गन्दे विचार यानी गुनावन उठते रहते हैं, जिनको कि उठना नहीं चाहिये। ऐसी अवस्था में तो अपने आप को शब्द स्वरूपी गुरुः सारशब्दः के, जो कि सारे विश्व की रचना व पालन पोषण करने व रक्षा करने का आधार है, के शरणागत कर देता हूं और वो शब्द स्वरूपी गुरु मेरो रक्षा करता है व करता रहा है। आगे मौज मौज मौज। इस लिये संतों ने कहा है कि "संत तब तक भय करे जब तक पिंजर साथ" और यह भी कहा है कि :

कंचन तजना सहज है सहज त्रिया का नेह।
मान बढ़ाई ईर्षा, तजना मुश्किल एह॥

जीवन मुक्त अवस्था में रहने वाले व्यक्ति का जीवन निर्वाह का काम मौज से कुदरतन होता रहता है। उसकी कामना या वासना स्वयं कम होती जाती है या क्षीण होती रहती है। एक समय था जब मुझे पुस्तकों से यह ज्ञान मिला था कि मनुष्य को मुक्ति, जिसको पाने का मैं बचपन से ही अभिलाषी

था, को प्राप्त करने के लिये वासना अथवा कामनाओं से रहित होना आवश्यक है। मैं बहुत कोशिश करने पर भी, शायद गृहस्थ में रहने के कारण वासना कामना रहित नहीं हो सका और निराशा का मुँह देखना पड़ा। मौज के अधीन एक दिन मैंने अपने सत्गुरु परमदयाल जी महाराज को यह फरमाते हुए सुना कि :—

जहां काम तहां नाम ना. जहां नाम नहीं काम।
रवि रजनी, दोनों जने, रहे न एकई ठाम॥

इन बचनों को सुन कर मैं गद गद हो गया और ख्याल पकाया कि जब हम वासना (कामना) रहित नहीं हो सकते तो नाम की भक्ति को ही पूर्ण करना चाहिए जिसके पूर्ण होने से कामायों व वासानाओं से स्वत: ही बचा जा सकता है। यानि जहां नाम तहां नहीं काम। और फिर पूरा बल नाम की भक्ति या सुरत शब्द योग, जिसका वर्णन अगले पुष्प में किया गया है, पर ही लगाना चाहिये और लगाया। अपने सत्गुरु की दया से सोपान दर सोपान सुरत को चढ़ाने पर अशब्द गति अन्तिम अवस्था प्राप्त की और अपने आपको व अपनी ज़ात

को पहचाना अथवा अनुभव किया। परन्तु इस अवस्था में जो कि अपने जीवन में कई बार आई है, मैं ठहर नहीं पाता। जब वहां से उत्थान होता है तो सार शब्द (शब्द ब्रह्म) में आता हूं और इस शब्द का व निर्मल प्रकाश का अधिकतर साधन करता रहता हूं अथवा कहिये कि सतपद में रहता हूं। इस अवस्था को ही संतों ने जीवन मुक्त अवस्था कहा है। अपने निजि अनुभव के अनुसार मैं लिखने को मजबूर हूं कि इस अवस्था में रहते हुए कभी-कभी या तो इसलिए कि अपने पिछले जन्म के कर्मों के अनुसार या सत्गुरु आज्ञा पालन अनुसार किसी का लेना देना बाकी है, अक्सर शुभ कामनाएं व कभी-कभी अशुभ कामनाएं भी उठती रहती हैं। उसके असर से बचने के लिए में अपने इष्ट देव तथा बाहरी गुरु और (शब्द ब्रह्म) सार शब्द अथवा अन्तरी सदगुरु के शरणागत होकर प्रार्थना करता रहता हूं और निष्काम भाव से उस कामना से बचने की पूरी कोशिश करता रहता हूं।

नोट :—नाम की भक्ति की पूरी ब्याख्या के

लिए देखिये पुष्प नं ४ अशब्द गति, जिसका कि ऊपर वर्णन किया गया है, अन्तिम अवस्था है, परन्तु वह साधन से प्राप्त नहीं होती। साधन से सुरत सार शब्द तक पहुंच सकती है वहां से आगे अशब्द गति में पहुंचना आदि कर्ता की दया पर निर्भर करता है, ऐसा मेरा निजी अनुभव है, जो कि सन्तों की वाणियों से मेल खाता है। संत कहते है :—

जा पर दया आदि कर्त्ता की वह यह न्यामत पावें।

मैं ऐसा लिखने पर क्यों मजबूर हुआ ? इसलिए कि जब-जब मैंने इस अशब्द गति को साधन द्वारा प्राप्त करने के लिए साधन किया उस दिन वह अशब्द गति नहीं आई और यह अवस्था प्राप्त हुई कि :—

सहज ही धुन होत है, अपने घाट के माहिं।
सुरति शब्द मेला भया, मुख की हाजत नाहिं।

वहां से आगे क्या होता ? सार बचन में लिखा है :—

सुरत समानी शब्द में, ताहि काल न खाय।

इस के आगे सार वचन में लिखा है :—

सुरत हुई अतिकर मगनानी।
पुरुष अनामी जाय समानी॥

अनामी पुरुष में समा जाने वाली अवस्था अशब्द गति आ जाने पर प्राप्त हो जाती है और इस अवस्था में इस बात का पूरा पता तो लग जाता है कि वह और मैं क्या हैं। पर कोई वहां हमेशा ठहर नहीं सकता। इसलिए सार शब्द सुनते हुए जीवन व्यतीत करना पड़ता है। इस आशा पर कि शरीर त्यागते वक्त यह शब्द सुनाई दे तो फिर जन्म मरण से छुटकारा मिल जाता है।

पुष्प नं० ४

नाम की भक्ति

अथवा

सुरत शब्द योग या सहज योग

नर देह हमको क्यों मिली हमने सही जाना नहीं।
वेद, शास्त्र, संत-मत को ठीक पहिचाना नहीं॥
संत कहते देह नर की है मिली इस वास्ते।
लोक सुख परलोक सुख दोनों को पाने के लिये॥

लोक सुख तन मन का सुख औ तीजा आत्मानन्द है।
परलोक का सुख मुक्ति है, शान्ति है ब्रह्मानन्द है॥

लोक अलोक सुख पावन तांई।
सहज जुगत सब संतन गाई॥
संत बतावें नाम की भक्ति।
नानक कबीर और तुलसीदास भी॥

नाम की महिमा

नानक दुखिया सब संसारा, सुखी वही जो नाम अधारा।
—गुरु नानक देव

हंसा करो नाम नौकरी॥ टेक॥
नाम बिदेही निसु दिन सुमिरै, नहीं भूलै छिन घरी। 1।
नाम बिदेही जो जन पावै, कभुं न सुरति बिसरी। 2।
ऐसो शब्द सत्गुरु से पावै, आवागमन हरी। 3।
कहै कबीर सुनो भाई साधो पावै अमर नगरी। 4।
—संत कबीर

चहुँ जुग चहुँ श्रुति नाम प्रभाऊं।
कलि बिसेषि नहीं आन उपाऊं॥

ध्यान प्रथम जुग मख बिधि दूजे।
द्वापर परितोषत प्रभु पूजें॥
कलि केवल एक नाम अधारा।
वेद पुराण संत मत सारा॥

नाम जपित जेहि जागत जोगी।
विरति विरंचि प्रपंच बियोगी॥

ब्रह्म सुखहि अनुभवहिं अनूपा।
अकथ अनामय नाम न रूपा॥

कहौं कहां लगि नाम बड़ाई।
रामु न सकहिं नाम गुन गाई॥
—गोस्वामी तुलसीदास

नाम धुन सुनो शब्द धुन गुनो।
गगन चढ़ चलो प्रेम लौ लाय। 1।

काल कुल दलो, दयाल पद चलो।
मगन होय रहो, परम पद पाय। 2।

घाट घट खुले, बाट तब चले।
द्वार तिल धसे, श्याम पद पाय। 3।

सेत पहिचान, जोत लख आन।
सुखमना जान, बंक धंस जाय। 4।

संख धुन मिले, सुरत फिर पिले।
भेद तब खुले, नाद धुन गाय। 5।

सुन्न चढ़ आय, मानसर नहाय।
हंस गति लाय, चन्द्र में धाय। 6।

खोज कर चली, महासुन मिली।
काय निज गली, बिहंग हो जाय। 7।

भंवर गढ़ तोड़, बांसरी घोर।
सोहं का शोर, सुना रस खाय। 8।

पाय पद चार, पुरूष घर प्यार।
बीन धुन सार, सुनो निज आय। 9।

अलख घर मिला, अगम गुल खिला।
चाल धुर चला, लिया सब काज बनाय। 10।

एक पद रहा, गुप्त सो रहा।
सीस अब धरा, चरण राधास्वामी जाय। 11।

—संत राधास्वामी दयाल

नाम की व्याख्या

नाम-नाम सब कोई कहे, नाम न चीन्हें कोय।
जा शब्दै साहिब मिलै, नाम कहावत सोय॥

अर्थात अपने अन्तर में होने वाले जिस अनहद शब्द का सुरत याने तवज्जह से सुनते सुनते साहब अर्थात् परमात्मा जिसे कोई अनामी पुरुष, कोई अकाल पुरुष कोई सत्पुरुष, कोई अल्लाह, कोई राम और कोई गौड कहता है, उससे मेल याने योग हो जाता है उस शब्द का नाम है 'नाम'। वह शब्द अन्तर में कहां और कैसे मिलता हैं :—

शब्द सबकी खोपड़ी में गूंजता हरदम अजीज।
पर वही सुन पाते हैं, हो जिनको सुनने की तमीज॥
अनहद कहे कोई शब्द को, औ कोई आवाजे खुदा।
रम रहा वह सबके अन्दर, कोई नहीं उससे जुदा॥
शब्द ब्रह्म सब शास्त्र कहते, सूफी का वो इलहाम है।
उद्गीत कहते उपनिषद्, संतों का वह सत नाम है॥

फर्क अल्फाजों का है, और सार सबका एक है।
इसको पावेंगे वही, जिनकी लगी वहां टेक है॥
सतनाम को सुन संतजन, देते खबर धुर धाम की।
शब्द अनहद को ही सुनना, सच्ची भक्ति नाम की॥

सवाल

जब वह शब्द हरेक मनुष्य की खोपड़ी में गूंजता रहता है और खोपड़ी में ही कान हैं, तो वह सब को सुनाई क्यों नहीं देता ?

उत्तर

कान जिस्मानी उसे, हरगिज नहीं सुन पायेंगे।
मन आत्मा भी शब्द का, अनुभव नहीं कर पायेंगे॥
सुरति सुनती शब्द को, पर सुरत को जाना नहीं।
कोई सत ही बतलायेंगे, सौभाग्य से मिले वें कहीं।
सुरति का और शब्द का, वे भेद सब बतलायेंगे॥
पांच शब्दों के निशां, सर में तेरे दिखलायेंगे।

सवाल

शब्द के अभ्यास से क्या फायदा हो जायगा ?

उत्तर

तन का सुख भी पायेगा और मन का खुद मिल जायेगा।
कठिन आत्मानद भी तुमको सुलभ हो जायेगा॥

सहज युक्ति से सहज हो, ब्रह्ममय हो जायेगा ।
ब्रह्ममय हो जायगा, निज जात में रल जायेगा ।।
अकथ ब्रह्मानन्द का, अनुभव तुझे हो जायेगा ।

सवाल

एक वृद्ध पुरुष का संत कीना राम से कि क्या मैं भी इस भजन को कर सकता हूं ?

उत्तर

जो तूं भजन करन चाहे, तो किसने तुझको रोका है ?
तेरी कचाई रोक रही है, तूं उल्लू का छोका है ।।
सुरति भजन से जग इन्द्रिन से, जुदा जुदा यह नौका है ।
जो तूं दोनों को साधे तो, इसमें क्या बे मौका है ?
जो तूं भजन करन चाहें तो, किसने तुझको रोका है ?

सवाल

एक गृहस्थ स्त्री व पुरुष का कि महाराज हम तो रात दिन अपनी गृहस्थी के पालन पोषण में ही लगे रहते हैं और कभी कोई चिंता तो कभी कोई चिंता लगी रहती है । क्या हम भी इस भजन अर्थात् सुरत शब्द योग या नाम की भक्ति का साधन कर सकते हैं ?

उत्तर

शब्द का अभ्यास साधो, गृहस्थियों का ही योग है ।
यह योग में ही भोग है, और भोग में ही योग है ।।

अर्थात् 'प्रवृति में निवृत्ति' और निवृत्ति में प्रवृति' अथवा सहज योग है।

इसी का नाम 'नाम' है और जितने भी संत हुए हैं सबने गृहस्थ में रहकर यह कमाई की है। जब

अन्तर शब्द की धुन प्रकटी, बाहरका गाना भूल गया।
घर में अपने बैठक पाई, मन द्वन्द्व मचाना भूल गया।

संत किसे कहते हैं ?

उधर है लीन मालिक में, इधर हम तुममें रहता हो।
हमारी पीर हरने को, हजारों पीर सहता हो।।

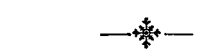

पुष्प नं० ५

सुरत शब्द योग के साधन में सफलता

नाम की भक्ति या सुरत शब्द जिसका जिकर पुष्प नं० ४ में पूरी तरह किया गया हैं सुरत शब्द योग के साधनों में सहज युक्ति से शीघ्र व सहज सिद्धि प्राप्त करने के लिए आगे बताई हुई छः चीजों

का सहारा लेना परम आवश्यक है। ऐसा मैं क्यों कहता हूं ? क्योंकि मैंने इन छः चीजों का सहारा लिए बिना भी साधन किया है और सहारा लेकर भी किया है। सहारा बिना लिए हुए जब शुरू-शुरू में मैंने अभ्यास किया था सत्रह साल अभ्यास करने पर सतलोक व सच खंड मेरी सुरत बहुत मुश्किल से पहुंच पाई थी और जब मैंने नीचे लिखी हुई छः चीजों का सहारा लेकर अभ्यास किया तो एक ही साल के भीतर बाकी सब सोपानों को खतम करके अशब्द गति का अनुभव करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। तीन आधार। तीन साधन। सत्गुरु, सतसंग, सतनाम, सुमिरन, ध्यान व भजन। इन सबकी व्याख्या नीचे की जावेगी।

आधार

१. सत्गुरु आधार :—

गुरु वोही जो शब्द स्नेही, शब्द बिना दूसर नहि ये ही।
शब्द कमावें सो गुरु पुरा, उन चरनन की होजा घूरा॥
और पहिचान करो मत कोई, लक्ष अलक्ष न देखो कोई,
शब्द भेद लेकर तुम उनसे, करो कमाई तन से मन से।

इसके अलावा गुरु जिन्दा होना चाहिए और

गृहस्थ होना चाहिए जो गृहस्थ में रहता हो यानी जो गृहस्थ में होने वाली चिन्ताओ व समस्याओ को अच्छी तरह समझता हो। क्योंकि गुरु किया जाता है गुरु बनने के लिए अथवा गुरु जैसा बनने के लिये।

गुरु की कीजे बंदगी, कोट-कोट परनाम।
कीट न जानि भृंग को गुरु करले आप सामान॥

२. सतसंग आधार :—

सतसंग किसको कहते है, सुन लेवे सब कोय।
सत नाम सत पुरूष की, जहां पर चरचा हो॥

अथवा सुरत शब्द अभ्यासी को वही सतसंग कारगर होगा जहां उस सतपुरूष की, जिसकी हमारी सुरत अंश है, चरचा होती हो व सतनाम की चरचा होती है जिसको अन्तर में प्रकट करके व उसे सुनते हुए हम अपने मालिक से मेल करते हैं।

बिन सतसग विवेक न होई, बिन गुरु कृपा सुलभ नहीं सोई।
कछकु दिवस करिये सतसंगा, बिन प्रयास होहि है भ्रम भंगा॥

३. सतनाम आधार :—

वह शब्द जो हर नर चोला धारी की खोपड़ी में हर समय गूंजता रहता है।

नाम-नाम सब कोई कहे, नाम न चीने कोय।
जा शब्दे साहब मिले, नाम कहावत सोय॥

साधन

४. सुमिरन साधन :—दीक्षा देते समय सत्गुरु व आचार्य जिसको सत्गुरु ने नाम देने का अधिकार दिया हो एक नाम सुमिरन के लिये बताता है। उस नाम के दो टुकड़े करके सांस में जपने के लिये बताता है। पहिले टुकड़े के अक्षरों को सांस ऊपर ले जाते समय में ख्याल बनाना चाहिये कि हमारा सांस पहिले टुकड़े के अक्षर बोल रहा है और नीचे आने वाले सांस दूसरे टुकड़े के अक्षर को बोल रहा है। यह शब्द जीभ, होंठ और कठ से नहीं बोला जाता है और संतों ने इसलिये इस तरह सुमिरन करने को अजपा जाप कहा है। इस तरह सुमिरन करने से हमारी सुरत की धारें जो मन की धारों के साथ मिल कर इन्द्रियों में अटकी रहती हैं दोनों भोओं के बोच काले तिल या आंजना चक्र पर एकाग्र हो जाती है और साधक की धारना शक्ति बढ़ जाती है और अब वह मूर्ति के ध्यान का अधिकारी बन जाता है अथवा वह साधक शरीर के ज्ञान बोध से ऊपर उठ जाता है। ऐसे अभ्यासी की सुरत पिन्ड या तन से निकली हुई कही जाती है।

५. ध्यान साधन :—

ध्यान मूलम गुरु मुर्ति. पूजा मूलम गुरु पदम।
मंत्र मूलम गुरु वाक्यम, मोक्ष मूलम गुरु कृपा॥

ध्यान के साधन को मैं (Master Key) यानी सब तालों की एक कुन्जी या चाबी कहा करता हूं। क्योंकि इस साधन से गुरु मूर्ति त्रिकुटी के स्थान पर जम कर बैठ जाती है और यह तन के सुख, मन के सुख व आत्मानन्द तथा सुरत के कल्याण में सहायक होते है। यहां तक का साधन मैं तजवीज़ करता हूं कि हर गृहस्थी को करना चाहिये। इस साधन से हमारी सुरत में रिद्धि-सिद्धि आ जाती है और हमारे तन व मन को सुख का सामान, जो संसार में बिखरा हुआ है, उसके प्राप्त करने में सुगमता और शीघ्रता आ जाती है।

ध्यान के साधन से सुरत प्रकाश को अंतर में देखने व अंतर में शब्द को सुनने की अधिकारी हो जाती है। ध्यान को बिना पूरी तरह पकाये साधक के अन्दर कभी २ शब्द व प्रकाश प्रगट तो हो जायेगा पर ठहरेगा नहीं। इस साधन के साधक को गुरु से अटूट प्रेम व विश्वास होना जरूरी है।

प्रेम के अधीन सुमिरन, सुमिरन के बस में ध्यान है। ध्यान के बस में गुरु बल और गुरु का ज्ञान है। गुरु वीत राग पुरुष होना चाहिये।

वीत राग सत पुरुष का, जो नित करते ध्यान।
तन के मन के सुख मिल, आत्मानंद निर्वाण॥

इस साधन को सुगम बनाने के लिए सब से पहिले जरूरी है कि दुनियावी हर काम को करने से पहिले गुरु का ध्यान करलो।

चलते फिरते खड़े उताने, कहे कबीर हम उसी ठिकाने।

साथ ही १५–२० मिन्ट तक त्राटक का अभ्यास होता रहे तो गुरु मूर्ति का त्रिकुटी में बिठाना आसान हो जाता है।

त्राटक का साधन :—इस साधन के लिये गुरु के फोटो को अपनी आंखों के सामने इतना ऊंचा रखना चाहिये या लटकाना चाहिये कि साधक की आंखें और फोटो की आंखें एक ऊंचाई पर रहे। फिर साधक को किसी आसन पर बैठकर अपनी आंखों से गुरु की आंखों को इतनी देर तक घूरते रहना चाहिये जब तक पलक अलक्साय न जायें और अलकसाते ही आंखें बंद करके दोनों भौवों के बीच में ये ख्याल बनाये

कि गुरु की आंख कैसी थी, मूंछ कैसी थी। वगैरह वगैरह। जितनी देर अन्दाज़न आंखें खुली रहें उतनी ही देर बंद रख कर फिर खोल दो। फिर इसी अभ्यास को दिन में २०–२२ बार दोहराना चाहियें। थोड़े दिन में नतीजा यह होगा कि कभी अन्तर में पहले चौखटा प्रकट होगा। तुम इसी अभ्यास को प्रतिदिन दोहराते रहो। कुछ दिन के अन्दर चौखटे में कभी गुरु की आंखें, कभी सिर, कभी मूंच्छें इत्यादि प्रकट होती रहेगी और काफी दिन अभ्यास करने के बाद कुल मूर्ति चौखटे में आकर बैठ जावेगी, पर यह धुंधली होगी। तुम इसी अभ्याय को तब तक दोहराते रहो कि जब तक मुर्ति साफ नजर न आने लगे। फिर तो ऐसा हो जावेगा कि :—

दिल के आईने में है तस्वीरे यार।
जब कभी गर्दन झुकाई देख ली॥

लेकिन कुछ लोगो के इस अभ्यास से मूर्ति महीने दो महीने में बैठ जाती है और किसी को २

या ४ मास भी लग जाते हैं और किसी को आठ दस महीने अभ्यास करने पर भी मूर्ति नहीं बैठती। ऐसा अभ्यासी जिसको आठ–दस महिने में भी मूर्ति नहीं बैठती है गुरु से प्रार्थना करता है कि :—

काल चक्कर से बचाना, नाथ गर मंन्जूर है।
आन हृदय में विराजो, आपसे क्या दूर है।
काल ने पकड़ा हृदय और, है मरोड़े दे रहा।
नाथ अब करूणा करो, वरना वह चकना चूर है।

गुरु का उत्तर :—

दिल में तेरे बैठने को हर घड़ी आता हूं मैं।
लौट जाता हूं उसे खाली नहीं पाता हूं मैं।
ख्याल बद बद ख्वाहिशी कीना बुगज और बैर की।
गन्दगी मन में भरी, वहां ठहर नहीं पाता हू मैं।
इस गन्दगी को दूर कर, इन्सान बन, इन्सान बन।
मेरे रहने की जगह है. शुद्ध, सुथरा साफ मन।

फिर साधक कहता है गुरु महाराज ! और कोई तरीका बतावो। गुरु कहता है बता तो दूंगा, पर शायद तुझ से हो न सके। फिर सुन ले :—

जो या विध मुझमें सुरतिया लगावे.
मैं उसमें समाऊं वो मुझ में समावे।
जैसे नटवा चढ़त बांस पर लोगन स्वांग दिखावें।
अपनो भार धरे सर ऊपर, सुरत बरत पर लावें॥

जो या विध मुझ में सुरतिया लगाबे
जैसे कामिन धरे कूप घट, सखियन सो बतलावे।
अपना राच रचे सखियन संग, सुरत घघर पर लावे॥
या० विध०

प्रेम-प्रेम सब कोही कहे. प्रेम न चीने कोई।
आठ पहर भी ना रहे. प्रेम कहावत सोय॥
जो या विध मुझ में सुरतिया लगावे।
मैं उस में समाऊं वह मुझमें समावे॥
फिर चिकना घड़ा बन ऐसा वो जावे।
चिन्ताऐं बरसें, बून्द न समावें॥
न दुःख ही सतावें न सुख भरमावें।

जब साधक को यह गति हो जाती है तो दुःख या चिन्ताऐं आने पर भी अन्तर में मूर्ति को प्रकट करके उनके असर से बच जाता है और साथ ही उसकी सुरत अन्दर के शब्द सुनने और प्रकाश को देखनें की अधिकारी हो जाती है। फिर गुरु से मिल कर शब्द व प्रकाश को अन्तर में प्रकट करने का तरीका पूछ अगला साधन नं० ३ शुरु कर सकता है।

६. साधन नं० ३ भजन :—

संतमत में भजन के माने हैं कि हमारे अन्तर

में जो शब्द होते हैं उनको प्रकट करना और सुरत से उसको देखना। संतमत के तीनों साधन अन्तर मैं किये जाते हैं और इनमें और बाहर किये हुए साधनों में ऐसा ही अन्तर है जैसा कि रात को चार चपाती खाकर सोया जाय और चार ही चपाती पेट पर बांध कर सोया जाय। अन्तर में खाई हुई चपातियां खून व रस बनाऐंगीं और शरीर मैं ताकत पहुंचावेंगीं जब कि बाहर बंधी हुई चपातियां खाज पैदा करेंगीं और बदबू फैला देंगीं। अन्तर के अभ्यास सुमिरन व ध्यान पूरा हो जाने पर अपने सतगुरु या आचार्य की शरण में जाकर इन शब्दों व प्रकाश का भेद और उनके प्रकट करने का तरीका और उनको सुरत से देखने व सुनने का ढंग मालूम करना चाहिये। जैसे डाक्टर लोग शरीर की हड्डियों, नसों व अन्तर रहने वाली अतड़ी इत्यादि का चित्र बना कर अन्दर की हालत जानते हैं तथा जानने व जनाने के लिए चित्र बनाते हैं ठीक उसी तरह हम उन चक्रों व दलों व पदमों के स्थान व रूप दिए हुए चित्र में दिखाते हैं।

चित्र आन्तरीय सोपानें

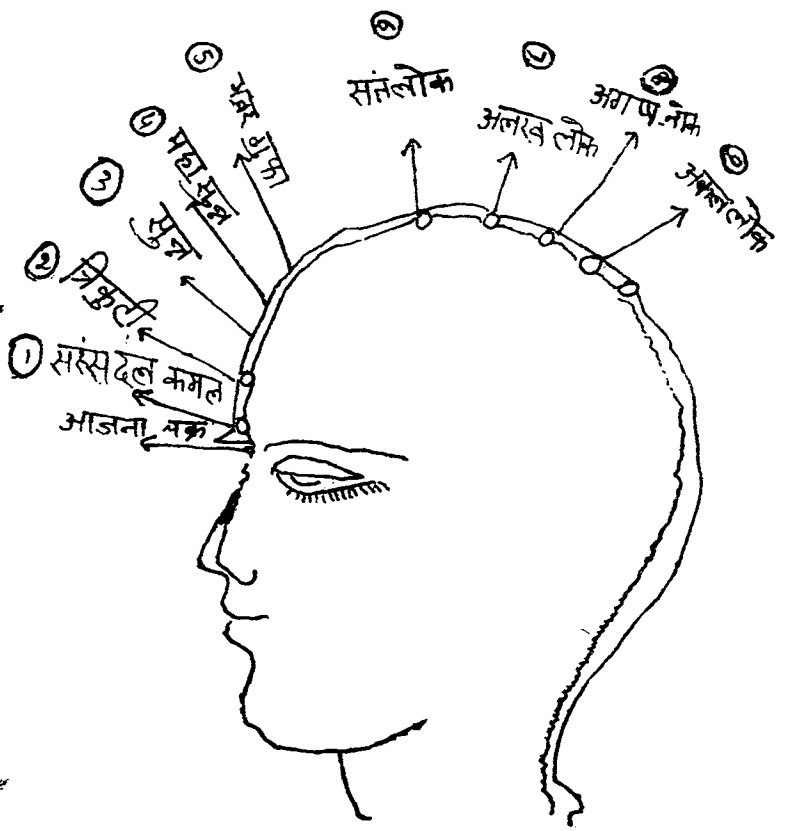

क्रम	स्थान या सोपान	शब्द	प्रकाश
			की सुगन्ध भीनी नाक से आती है निर्मल जल के तालाब आदि ।
६.	सत् लोक या सच खंड	सत् सत् सत्	हज़ारों सूरजों का अथाह प्रकाश चकाचौंध नहीं ।
७.	अलख लोक	इससे आगे सत्गुरु के	०० ०० ०० ००
८.	अगम लोक	सामने सीना बसीना हो	
९.	अकह लोक	कर उसके सैन बैन से समझा जाता है ।	

नोट :—नं० ६ यानी सतलोक के आगे जाने वाला वह अधिकारी होता है जो नं० ६ तक के प्रकाश को भली भांति रवां कर चुका हो । इससे आगे जाने के लिये सद्गुरु के सीना बसीना होकर उनके सैन बैन से समझना होता है ।

मनुष्य का शरीर मुकम्मिल नमूना है अनामी पुरुष और माया का और इस शरीर में रहने वाली या बसने वाली सुरत ऊपर से नीचे व नीचे से ऊपर जाती है। सहूलियत से समझने के लिये इस शरीर को पांच हिस्सों में बाँटा गया है। ऐड़ी से लेकर अंजना चक्र या काले तिल तक शरीर का राज्य होता है और काले तिल से आधे माथे तक मन का राज्य होता है। आधे माथे से आधे सिर तक आत्मा का राज्य होता है और आधे सिर से चोटी को जड़ तक ब्रह्म का या शब्द ब्रह्म का राज्य होता है। इससे आगे चोटी के मुकाम पर अनामी धाम या अनामी पुरुष के बसने का स्थान होता है जिसे लोग राधास्वामी धाम या सतपुरुष धाम भी कहते हैं। शरीर के राज्य गुदा चक्र से लेकर अन्जना चक्र तक छः चक्र लगे रहते है और ये चक्र कुदरत ने शरीर की रक्षा करने उसको मजबूत बनाने या बडवार करने के लिए के लिए बनाए हैं।

स्थूल शरीर में तो यह स्थूल रूप में होते हैं और इनको हमारी आखें देख सकती हैं। जैसे नीचे से नं० १ गुदा चक्र नं० २ जननेन्द्रिय चक्र नं० ३ नाभी चक्र

व रचना को तथा अनामी पुरुष को जानने के इच्छुक रहते हैं और किताबों से इसको जानना चाहते हैं पर जान नहीं पाते, इनको इन सोपानों व स्थानों का पूरा-पूरा अनुभव हो जाता है और यकीन हो जाता है कि अगर मैं शरीर छोड़ते वक्त शब्द ब्रह्म में रहा तो मेरा बार-बार जन्म नहीं होगा और इसी का नाम सतपद या जीवन मुक्त अवस्था है।

प्रश्न :—अब एक सवाल कि क्या इसको गृहस्थी लोग भी कर सकते हैं।

जवाब :—यह भक्ति कुदरती भक्ति है। इसलिए कुदरत में रहने वाले नर चोला धारी स्त्री पुरुष तरह-तरह के मतावलम्बी व हर एक देश के लोग हर व्यवसाय के लोग, हर जाति के लोग हर मौसम में बिना खर्च किये, बिना कुछ सामान जुटाये, कर सकते हैं। बशर्तेकि उनको लोक सुख यानी संसार सुख और परलोक सुख की भी यानि मुक्ति पाने की तीव्र उत्कट अभिलाषा हो।

कुदरती सब वस्तुओं पर हरेक का अधिकार है।
धूपो हवा है कुदरती सब को मिले एक सार है॥

अभी ऐसी उत्कट अभिलाषा रखने वालों की संख्या मौजूदा जमाने में बहुत कम है। ऐसी उत्कट अभिलाषा उनको पैदा होती है जिनकी नाना प्रकार के मानसिक व आत्मिक दुःख उठाने के बाद यह धारणा बन जाती है कि :—

बहुत हुआ मैं तंग स्वांग चौरासी लाख भरते भरते।
नाक में दम आगया जन्मते बार बार मरते मरते॥
लिये अनगिनत जन्म बिताए त्राहि त्राहि करते करते।
भोग, वियोग और शोक अनेकन रोगन में सड़ते सड़ते॥
रहा न सिर पर बाल एक भी जम के जूत पड़ते पड़ते।
बहुत हुआ मैं तंग स्वांग चौरासी लाख भरते भरते॥

संसार के अन्दर कुदरत के दिये हुये और मनुष्यों के पैदा किए हुए पहले जमाने में मानसिक व आत्मिक क्लेश बढ़ तो बहुत गये हैं परन्तु अभी उस हद पर नहीं पहुंचे हैं कि लोगों में ऊपर लिखी हुई धारणा पैदा हो। जिस रफतार से दुनिया में मानसिक व आत्मिक क्लेश बढ़ते जा रहे हैं उनको देखते हुए यह संत लोग अन्दाजा लगाते हैं कि आयन्दा जमाने में जब मानसिक व आत्मिक क्लेश बहुत बढ़ जावेगा और ऊपर लिखी हुई धारणा बहुत अधिक लोगों में पैदा होती जावेगी, तब इस

संतमत के अभ्यास की ओर अधिक से अधिक लोग झुकेंगे। इस अभ्यास को कुदरती क्यों कहा गया है? इसलिए कि इस अभ्यास में किसी ऐसी चीज़ की जरूरत नहीं होती कि जिसे तलाश करने के लिये सरगर्मियां करनी पड़ती हों।

अब रहा सवाल कि क्या गृहस्थी लोग भी इस अभ्यास को कर सकते हैं? उसके जवाब में इतना ही कहना काफी होगा कि जितने भी संत अब तक पैदा हुए हैं सब गृहस्थ में ही रह कर संत बने हैं। मैं अपने निजी अनुभव के आधार पर भी इसी नतीजे पर पहुंचा हूं कि इस अभ्यास को करने के लिये गृहस्थी लोग ही ज्यादा अधिकारी हैं। क्यों?

दीन गरीबी मत सन्तों का।

इस सिद्धान्त के अनुसार गृहस्थी लोग जिनको नाना प्रकार के व्यापार व व्यवहार करने पड़ते हैं खामोखा मजबूर दीन व गरीब स्वभाव वाले होते हैं। इसके इलावा मेरा निजी अनुभव यह भी है कि इस अभ्यास के करने वालों के सुमिरन व ध्यान में सफल होने पर गृहस्थियों को जरूरत की दुनियावी चीजों के जुटाने में अवश्य आसानी होती

है और ध्यान का साधन करने वाला शब्द व प्रकाश का साधन करने का अधिकारी हो जाता है। अपने अन्तर में शब्द व प्रकाश को आसानी से प्रकट करने व उनमें तन्मय होने के लिए साथ ही संतमत की शिक्षा का निचोड़ यह है कि घर में शान्ति रखना भी जरूरी है।

जिसके पैसा नहीं है पास, उसको दुनियाँ लगे उदास।
घर में आठों पहर उपाध, योगी साध योग अब साध॥

इसके लिये पुष्प नं० १० देखिये।

पुष्प नं० ६

मत मतान्तर प्रवृत्ति और निवृत्ति मार्ग की व्याख्या

संसार में आर्य समाजी बतलाते हैं कि सारी दुनियां में नौ सौ से उपर मत मतांतर फैले हुए हैं। लेकिन हमारी दृष्टि से वे चार विचार धाराओं में बांटे जा सकते हैं। विचार धाराएं निम्न हैं :—

१. प्रवृत्ति मार्ग २. निवृत्ति मार्ग ३. प्रवृत्ति में प्रवृत्ति ४. प्रवृत्ति में निवृत्ति।

१. प्रवृत्ति मार्ग :—वह मार्ग है कि जो संसार में रह कर, संसार की वस्तुओं और शरीर का सुख भोगना ही मुख्य बताते हैं। यह मार्ग उन मजहब वालों का है जो पुनर्जन्म को नहीं मानते हैं।

जैसे :—मुस्लमान, यहूदी वगैराह २ और बाकी तीनों मार्ग वे मजहब वाले बताते हैं जो पुनर्जन्म को मानते हैं। जैसे आर्य, सनातनी, जैन और बौद्ध इत्यादि २। प्रवृत्ति मार्ग के मानने वाले हर कीमत पर दुनियां का सुख बटोरने की चेष्टा करते हैं और उनका तकिया कलाम हो जाता है कि :—

दुनियां के मजे हैं हरगिज वो कम न होंगे।
अफसोस है तो यह है कि एक दिन हम ही न होंगे॥

इस मार्ग पर चलने वाले दूसरे मार्गियों के धार्मिक स्थानों को नष्ट कर व उनकी तजवीज पर बट्टा लगा जबरदस्ती मारकाट कर कत्ले आम कर लोगों की खाल तक उतरवा कर, छोटे बच्चों को दीवारों में चुनवा कर, अपने मार्ग का प्रचार करना अपना कर्तव्य समझते हैं। यहां तक ही नहीं इस मार्ग के पर चलने वाले ऐश और आराम के लोलुप अपने भाईयों, बापों को जेल में डालना, उनको देश

निकाला देना, अन्धा कराना और जेलों में डालकर उनको त्रास देकर अपने लिये ऐश आराम का रास्ता साफ करने में नहीं हिचकिचाते। यह वाक्यात हिन्दुस्थान के पुराने इतिहास से और बंगला देश के मौजूदा इतिहास से पूरी तरह सिद्ध हो जाता है।

२. निवृत्ति मार्ग :—

इस मार्ग के चलने वाले जन्म मरण से छुटकारा पाने के लिए दुनियां के ऐश और आराम को नफरत की निगाहों से देखते हुए जन्म मरण से बचने के लिये यह मार्ग अपनाते हैं और उनका तकिया यह होता है कि :—

दुनियां के धन्धे और फन्दे गौरख धन्धे से तंग हुआ।
नहीं तन को चैन, नहीं मन को चैन, दिन रैन क्लेश में फंसा हुआ।
लात मार दूं दुनियां को, करमो का मुंह कर दूं काला।
नहीं रहे बांस नहीं बजे बांसुरी, सहज मिले यूं छुटकारा।

अथवा निवृत्ति मार्ग वाले आवागमन को मानते हैं, और उससे छूटकारा पाने के लिये माया को छोड़ना चाहते हैं। वे इस स्थूल जगत को ही माया मानते हैं और घर बार को छोड़ कर कहीं जंगल

या दरिया के किनारे अकर्मन्यता को अपनाकर अपने जीवन बिताने की सामग्री के लिए दूसरों के मोहताज होकर रहना पसन्द करते हैं। पर वे उस बात पर गौर नहीं करते कि इस स्थूल जगत यानी मोटी माया के अतिरिक्त झीनी माया भी है जिसे साधु सन्त विचार की दुनिया या माया कहते हैं। अव्वल तो मोटी माया से बचना भी इस शरीर को साथ रखते हुए संभव मालूम नहीं होता, बल्कि वो अपने आप को धोखे में रखते हैं और दूसरों को भी। एक साधू ने कहा है कि :—

माया में रह कर यह कहना, माया को हमने छोड़ दिया।
यह धोखा है, यह धोखा है. यह धोखा नहीं तो और है क्या।
चलता फिरता, खाता पीता, मांगे भिक्षा, लेता दक्षिणा।
और कहे कर्म हम त्याग दिए, यह धोखा नहीं तो और है क्या।

अगर यह भी मान लिया जाय कि घर-बार छोड़ कर और कर्म का संन्यास करके माया को छोड़ देना है तो भी विचारों की माया, जिसे झीनी माया कहते हैं नहीं छूटती।

मोटी माया सब तजें, झीनी तजी न जाय।
पीर, पैगम्बर औलिया झीनी सब को खाय॥

यानी जब तक कोई मन के विचारों पर विजय नहीं पाता उसका आवागमन छूट नहीं सकता। आवागमन सम्भव है उसका छूट जाय जो अपनी आत्मा पर लदे हुए मन व मन के विचारों को तथा तन व तन के विकारों को मिटा सकता हो :—

आत्म दुरुस्ती के लिये मन की दुरुस्ती लाजमी।
और मन दुरुस्ती के लिये भी तन दुरुस्ती चाहिए।
तन दुरुस्ती, मन दुरुस्ती खेल बच्चों का नहीं।
तन मन दुरुस्ती के लिए, अन्न धन दुरुस्ती चाहिये।
अन्न दुरुस्ती, मन दुरुस्ती, तन दुरुस्ती जिसकी हो।
आत्मा दुरुस्ती फिर भला उसकी न हो तो किसकी हो।

इसलिए सन्तों ने इस निवृत्ति मार्ग को ऊंचा दर्जा नहीं दिया।

विचार धारा नं० ३ : प्रवृत्ति में प्रवृत्ति इस विचार धारा वाले भी आवागमन मानते हैं। साथ ही यह भी मानते हैं कि इस जन्म में जो हम दान, पुन्य, यज्ञ, व्रत और अनेकों कर्मकांड कर जायेंगे, उसके बदले में स्वर्ग या अच्छे धनी घर में शारीरिक सुख साधन मिलेंगे और इसलिए वे बहुत से जप, तप, तीर्थ,

व्रत, कथाएं, कीर्तन करते व कराते रहते हैं और जैसी करनी वैसी भरनी के सिद्धान्त के अनुसार फल पाते भी रहते हैं। परन्तु ये लोग जन्म मरण से रहित नहीं हो पाते हैं। क्योंकि वह लोग तो बार बार जन्म लेकर अच्छे भोगों की इच्छा रखते हुए मरते हैं और अन्त मता सो गता के अनुसार जन्म लेना अनिवार्य हो जाता है।

विचार धारा नं० ४: यानी प्रवृत्ति में निवृत्ति वाले भी आवागमन को मानते हैं और अपने घर गृहस्थी में रह कर इस तरह का जीवन बिताते हैं कि उनको तन का सुख व मन का सुख अपने लिए व अपने आश्रित जीवों को प्राप्त हो। साथ ही जीवन-मरण से छुटकारा पाने के लिए भी आत्मानंद व ब्रह्मानन्द, जीवन मुक्त अवस्था प्राप्त कर सके। यद्यपि यह असंभव दिखाई देता है कि गृहस्थी का जीवन बिताते हुए नाना प्रकार के धन्धे करते हुए माया के फ्रन्दे यानी चिन्ताओं से ग्रसित रहते हुए जन्म मरण से छुटकारा पाने के लिये कैसे समय निकालें। परन्तु संतमत की शिक्षा बताती है कि अगर जन्म मरण से बचने की उत्कट अभिलाषा हो

तो यह बात कठिन होते हुए भी असम्भव नहीं। पुष्प नं० ३ व ४ को देखियेगा।

—※—

पुष्प नं० ७

पाँच कोष

शास्त्रों के अनुसार इस मनुष्य शरीर को पूरा नमूना माना है ब्रह्म और माया दोनों का यानी इस रूप में ब्रह्म भी जीवात्मा के रूप में मौजूद है और माया भी मौजूद है अन्तः करण (मन, चित्त, बुद्धि, अहंकार) के रूप में तथा स्थूल शरीर के रूप में और साथ ही यह भी माना है कि हमारा जीवात्मा शरीर के खोल या गिलाफ में पांच कोषों में बन्द है। सबसे पहला अन्नमय कोष, दूसरा प्राणमय कोष, तीसरा मनोमय कोष, चौथा विज्ञानमय कोष और पांचवा आनन्दमय कोष। शास्त्र ब्रह्म को, ईश्वर को या भगवान को आनन्द स्वरूप मानते हैं और हिदायत करते हैं कि जिनको मोक्ष पाना हो या आनन्द स्वरूप ईश्वर से मिलना हो तो उनको

अपने जीवात्मा को नीचे के चार यानी अन्नमय कोष, प्राणमय कोष, मनोमय कोष, विज्ञानमय कोष से निकाल कर आनन्दमय कोष में ले जाना चाहिए। चूंकि वे आनन्द को ही ईश्वर का रूप मानते हैं और आनन्द को ही ईश्वर का धाम मानते हैं और आनन्द कोष में पहुंच जाने वाले को ही मुमुक्ष मान लेते हैं, इन कोषों से निकलने के लिए वह हिदायत करते हैं कि आनन्दमय कोष में वह जीवात्मा पहुंचेगा जोकि शुद्ध कमाई यानी अपनी बीसों नाखुनों की कमाई का अन्न खाकर अन्नमय कोष को शुद्ध करले। इसलिए पिछले जमाने में ऋषि लोग जंगल में आश्रम बना कर रहते थे और अपने हाथ से खेती बाड़ी करते थे, बीसों नाखुनों से कमा कर खाते थे। अगर कमी पड़ती थी तो उस अन्न को बटोरते थे जो कि किसानों के अपने खेतों से अन्न काट कर सिलाहरों से अन्न को इक्ट्ठा करा कर ले जाने के बाद जो दाना दुनका खेत में पड़ा रह जाता था। क्योंकि वे जानते थे कि जैसा खाओ अन्न वेसा उपजे मन। इसलिए वे दूषित अन्न से बचते थे। इसलिए वह अन्नमय कोष से आसानी से निकल जाते थे।

चित्र पञ्च कोष

जबकि आजकल के महात्मा, योगी, तपस्वी, महान पंडित, आचार्य, गुरु, सत्गुरु कहलाने वाले अन्नमय कोष को शुद्ध रखने का किन्चित मात्र ध्यान नहीं रखते और दूसरों के कमाये हुए धन और अन्न की भीख मांग कर, दक्षिना मांग कर या अपने मुँह से या दूसरों को बहका कर अपनी प्रतिष्ठा करा कर कि ये बड़े सिद्ध पुरुष हैं पहुंचे हुए योगी हैं करामाती हैं या बहुत ही पहुंचे हुए संत अन्तर्यामी हैं, छीन झपट कर अपने पेट का पालन कर या बहुधा नशीली चीजें इस्तेमाल कर अपने अन्नमय कोष को अत्यन्त दूषित कर लेते हैं और इसी तरह जीवन बिता कर नरक के भोगी हो जाते हैं। संतमत भी अपने साधकों को सबसे पहले अन्नमय कोष को शुद्ध कर आगे के साधन यानी जैसे मन की शुद्धि, आत्म शुद्धि, सुरत की निर्द्वन्द्वता व जीवन मुक्त अवस्था को प्राप्त करने की तालीम देते हैं।

हमारे दादा गुरु हजूर दाता दयाल फरमाया करते थे कि सबसे पहले अन्नमय कोष व मनोमय कोष शुद्ध करके मनुष्य बनो और जब तक तुम मनुष्य नहीं बनते तब तक तुम साधक हरगिज नहीं

बन सकते। दूसरे के अन्न पर निर्भर रह कर यह कहना कि मैं साधक हूं या प्रचारक हूं या आचार्य हूं वह सब बकवास है। यह सब धोखा है और दूसरों को धोखा देकर माल हड़प कर, खाकर या पेट में ठूंस कर पशु बनना है। दाता दयाल की वाणी है :—

मोहताज जो गैरों का है, हरगिज नहीं इन्सान वो।
वो तो हैवानों से बदतर कायरो नादान हैं।

अगर किसी का सवाल है कि क्या इन्सान मौजूदा शक्ल में इन्सान नहीं तो उसका जवाब पूरी तरह जानने के लिए पढिये पुष्प नं० ८। रूहानियत बनाम इन्सानियत और अगर आत्म शुद्धि के लिए जानना हो तो देखो पुष्प नं० ३ में।

पुष्प नं० ८

रूहानियत बनाम इन्सानियत

रूहानियत की चर्चा होती रहती है यहां अरू वहां,
आइये देखें कि जड़, रूहानियत की है कहां।
रूहानियत की जड़ छिपी, इन्सानियत की तह में है,
इन्सानियत ही जहां नहीं, रूहानियत फिर वहां कहां।
शौक चढ़ आया तुझे, रूहानियत का गर अजीज,
पहले तू इन्सान बनले, पीछे बनना महात्मा।

इन्सानियत की कसौटी

सोच रे इन्सान ! क्या तू दर असल इन्सान है।
या शक्ल में इन्सान की बे पूंछ का हैवान है॥ सोचरे॥

मोहताज जो गैरों का हैं, हरगिज नहीं इन्सान वह।
वह तो हैवानों से बदतर, कायरो नादान है॥ सोचरे॥

प्रेम की लहरों के बहने, की जगह था जो हृदय।
द्वेष की अग्नि से जलकर, बन चला शमशान है॥ सोचरे॥

काम क्रोधों की लपट से, हो रहा पैमाल दिल।
तीन तापों की तपिश से, भुन गया सब ज्ञान है॥ सोचरे॥

वायदा करना अनेकों, पर निभाना एक ना।
विश्वास देकर घात करना, जुर्म आलीशान है॥ सोचरे॥

स्वार्थ सिद्धि के लिए, काटीं हजारों पॉकिटें।
घूंस खोरी चोर बाजारी की डाली बान है॥ सोचरे॥

रहजनी, चोरी, डकैती, कर रहा तू बरमला।
छोड़ कर ईमान पूरा बन चला बेईमान है॥ सोचरे॥

देश की सम्पत्ति को करता, नष्ट बहकावे में आ।
छप्पन करोड़ों का सरासर, कर रहा अपमान है॥ सोचरे॥

देश की करना तरक्की, हर बशर का फर्ज है।
पड़कर दलबन्दी में तू, उल्टा करे नुकसान है॥ सोचरे॥

विष मिला कर रस में, तू है बेचता बाजार में।
ग्राहकों के स्वास्थ्य की करता तू भारी हान है॥ सोचरे॥

दुःखियों को देना सहारा, सच्ची हरि की भक्ति है।
हरिजनों का दिल दुखा, खुद खोजता कल्याण है॥ सोचरे॥

पेट भरने के पड़े लाले, न मिलता अन्न अब।
बेशुमार आबादी बढ़ी, और बढ़ रही हर आन है॥ सोचरे॥

घी का दर्शन है न मुमकिन, छुट गये यज्ञो हवन।
आज कल का यज्ञ, पैदा करना कम सन्तान है॥ सोचरे॥

मठ बना, मन्दिर बना, और गद्दियों के नाम पर।
लूटता अज्ञानियों को, क्या यही सत् ज्ञान है॥ सोचरे॥

गद्दियां बेशक बना, पर उनका खुद मालिक न बन।
ट्रस्ट के आधीन कर, जो सम्पत्ति सामान है॥ सोचरे॥

आलिम बना पढ़ पोथियां, पर अमल से परहेज है।
कहता है जो मैं कहूं वो ही फकत सत ज्ञान है॥ सोचरे॥

आलिम बना तो मरहबा, आमिल बना खुशकिस्मती।
अमल से ही इल्म की, दुनिया में कदरो शान है॥ सोचरे॥

भेद रखता जात, मजहब, देश और रंग रूप का।
इन्सान से नफरत करे, हरगिज नहीं इन्सान है॥ सोचरे॥

खून का दरिया बहाता, मजहबों के नाम पर।
ये मजहबे इन्सानियत, या मजहबे शैतान है॥ सोचरे॥

छोड़दे शैतानियत, इन्सान बन इन्सान बन।
वरना यहां शैतान का मुंह, कुचल दे तूफान है॥ सोचरे॥

चीज क्या इन्सानियत, संतों ने बताया मित्रवर।
अपना सा जिया सबका जाने, दरअसल इन्सान है॥ सोचरे॥

पुष्प नं० ९

पूर्ण शरणागती

इस दुखों से भरे जगत में खुशी से रहना :—

खुशी से रहना है गर तुझको पहिले अधिकारी बन जा।
अधिकारी वो नहीं खुशी का जो पूरण शरणागत ना॥
शरणागत हां, शरणागत बस पूर्ण शरणागत बन जा।
खुशी न चूमे पांव तेरे तो जुम्मेदार हमें ठहरा॥
जा जाकी शरणे बसे, ताको ताकी लाज।
जल सोही मछी चढ़े, बहे जात गजराज॥

मछली पानी की शरणागती रहती है और इतनी शरणागती रहती है कि एक क्षण दूर नहीं रहना चाहती है। अगर किसी तरह पानी से दूर कर दी जाती है तो तड़फ कर मर जाती है। तो पानी को उस शरणागत रहने वाली मछली को अपने सिर के ऊपर से रास्ता देना पड़ता है। जबकि बड़े-बड़े दिग्गज हाथी पानी के बहाव में बहें चले जाते है। यह है शरणागती की विशेषता।

दाता दयाल की वाणी :—

गुरु शरणागत आवो, साधु गुरु शरणागत आवो॥ टेक॥
बिन गुरु दया विवेक न सुझे, ज्ञान गुरु संग पाओ॥ गुरु॥

तज अनेको को एक लखो तुम, एक में चित ठहराओ ॥
एक को त्यागो ज्ञान द्रष्टि से सत पद ध्यान जमाओ ॥
सत में एक अनेक कहां है, भरम मोह बिसाराओ ॥
द्वैत अद्वैत में भूल भरम है, चित से भरम मिटाओ ॥
भरम मिटे तब सार लखे कोई, कर सतसंग भरम मिटाओ ॥
सुरत शब्द साधन सीखो, घट में नाद बजाओ ॥
झलके अन्दर ज्योति की धारा, देख-देख हरषाओ ॥
राधास्वामी चरन शरण बलिहारी, गुरु पद सीस झुकाओ ।

सारवचन वाणी :— बचन ८ पेज १९६ ।

सतगुरु सरन गहो मेरे प्यारे ।
कर्म जुगात चुकाय ॥ १ ॥
भूल भरम में सब जग पचता ।
अचरज बात न काहू सुहाय ॥ २ ॥
भाग हीन सब जग माया बस ।
यह निर्मल गति कोई न पाय ॥ ३ ॥
जिन पर दया आदि करता की ।
सो यह अमृत पीवन चाहि ॥ ४ ॥
कहां-लग महिमा कहू इस गति की ।
बिरले गुरु मुख चीन्हत ताहि ॥ ५ ॥
बिन गुरु चरन और नहीं भावे ।
इस आनन्द में रहे समाय ॥ ६ ॥
दर्शन करत पिन्ड सुधि भूली ।
फिर घर बाहर सुधि क्या आय ॥ ७ ॥

ऐसी सुरत प्रेम रंग भीनी।
तिनकी गति क्या कहूं सुनाय।। ८ ।।
जोग बैराग ज्ञान सब रूखें।
यह रस उनमें दीखे न ताय।। ९ ।।
बड़ भागी कोई बिरला।
तिन यह न्यामत मिली अधिकाय।। १० ।।
राधास्वमी कहत सुनाई।
यह आरत कोई गुरुमुख गाय।। ११ ।।

शरणागत, शरणागत सब कहते हैं, कोई चार आने को मिठाई चढ़ा आया वह भी समझता है कि मैं शरणागत होगया, किसी ने फूलमाला पहना दी वह भी समझता है कि मैं पूर्ण शरणागत हो गया और किसो ने मन्दिर में १०) या १५) रु० दे दिये या चढ़ा दिये तो वह भो अपने आपको समझता है कि मैं भी पूर्ण शरणागत हो गया। परन्तु शरणागत की तो एक कसौटी है। उसको दिल पर लगा कर देखो। तब पता चल जावेगा कि पूर्ण शरणागत कौन हैं?

शरणागत की कसौटी

शरणागत जब हुआ किसी के, तुझ को बन्दे चिन्ता क्या।
जब तक हिये में चिन्ता ब्यापे, धोखा है शरणागत ना।।

पुष्प नं० १०

घर में शान्ति

घर में नहीं गर शान्ति, घट में कहां से लायगा ॥

जहां तक मैं अब तक जान सका हूं, संतमत की शिक्षा यह है कि ऐ मानव ! तुझे यह नर चोला लोक (संसार) के सुख और परलोक के सुख दोनों को पाने के लिये मिला है। इसलिए ऐसे ढंग से जिन्दगी को बना जिससे तुझे दोनों सुख प्राप्त हो जायें। कुल मौज मालिक से 'लोक' यानी संसार ऐसा बनता जा रहा है कि उससे शरीर के सुख की सामग्री का अभाव होता जा रहा है जिसके लिये जनसंख्या में अति वृद्धि और जनता में भ्रष्टाचार फैलना जुम्मेदार हैं। इन बातों को गृहस्थी में रहते हुये आजकल के सन्तों की पुकार है कि :—

लोक को पहिले बना, परलोक भी बन जायेगा।
गर यहां धक्के मिलें, धक्के वहां भी खायेगा ॥

इसलिये कि :—

जाको दर्शन इत्त हैं, वाको दर्शन उत्त।
जाको दर्शन इत्त नहीं, वाको इत्त न उत्त ॥

यही हाल धक्कों का है :–

जाको धक्के इत्त हैं, वाको धक्के उत्त ।
जाको धक्के इत्त नहीं, वाको इत्त न उत्त ॥

तू भजन कर चाहे ध्यान कर, चाहे योग की कर साधना ॥
संसार के साधे बिना, कुछ भी नहीं सच पावेगा ॥

मगर कुछ साधु संतों को ऐसा भी कहते सुना गया है कि संसार तो कुत्ते की दुम है। बड़े बड़े ऋषि आये, मुनि आये, महात्मा आये, श्री रामचन्द्र जी, श्री कृष्ण जैसे अवतार आये, अर्जुन, भीम और राणा प्रताप जैसे बलधारी जोधा आये, शूर वीर आये और अनगिनत सतियां आईं, क्या कोई इस कुत्ते की दुम रूपी संसार को सीधा कर सका ? एक महात्मा हमारे जीवन काल में आये जिनका नाम था महात्मा गान्धी। उस महान पुरुष ने सर्वस्व त्याग करके नाना प्रकार के कष्ट उठाकर यानी कई वर्षों तक जेलों की यातनाएं भोग कर संसार को सुधारने का बीड़ा उठाया जिसके फलस्वरूप भारत वर्ष को स्वतन्त्रता प्राप्त हुई।

मगर इस कुत्ते की टेढ़ी दुम रूपी संसार ने उस महापुरुष के साथ क्या व्यवहार किया कि ईश्वर

से प्रार्थना करते समय गोली से उड़ा दिया। यह है कुत्ते की दुम रूपी संसार। पिछले जमाने में भी बहुत से संसार के सुधारक ईसामसीह, स्वामी दयानन्द सरस्वती इत्यादि आये और उन्होंने बहुत सुधार भी किया। परन्तु इस कुत्ते की दुम रूपी संसार ने किसी को सूली पर चढ़ाया, किसी को ज़हर दिलाया, किसी को कत्ल कराया। इन बातों को पढ़-सुन कर सवाल पैदा होता है कि संतों की कौन सी बात मानें कि संसार को बनाने में लगें या इस कुत्ते की टेड़ी दुम को मालिक की मौज पर छोड़ दें। इसके उत्तर में सन्तों का कहना है कि इतनी बड़ी पूंछ रूपी संसार को मालिक की मौज पर छोड़ दें और उस छोटे संसार को जो तेरे घर में बसता है उसका सुधार कर यानी उसे बना अर्थात घर में शान्ति ला।

छोटा सा संसार तेरे घर में है परिवार में।
घर में नहीं गर शान्ति घट में कहां से लायेगा॥

लेकिन वह मनुष्य जो घर का मालिक तो बना हुआ है यानी घर वालों की परवरिश का जुम्मा लिया हुआ है और वह इतना धन नहीं कमा सकता कि घर वालों को पूरी तरह परवरिश कर सके तो

वह आदमी घर में शान्ति नहीं ला सकता। साथ ही वह महिला जो घर की मालकिन बनी हुई है घर वालों की आमदनी से ज्यादा खर्च कर देती है वह भी घर में शान्ति नहीं ला सकती। साथ ही घर में जितने प्राणी रहते हैं उन सबके अलग अलग अधिकार व कर्तव्य अनुसार आपस में सद-व्यवहार व सम्मान व प्रेम के साथ व्यवहार होना चाहिये और अधिकार अनुसार उसको भी सम्मान मिलना चाहिये। संसार में जितने विश्वव्यापी या देश-व्यापी युद्ध हुये उन सबका एक ही कारण था कि एक दूसरे के अधिकार को छीना गया या अपना कर्तव्य पूरी तरह पालन नहीं किया गया और जितने लड़ाई, झगड़े घरों में या गांवों में या देशों में हुये इस कुमति के अनुसार हुए कि एक ने दूसरे के अधिकार को छीना या अपने कत्तर्व्य का पूरी तरह पालन नहीं किया। जिन घरों में या देशों में दुर-भाग्यवश ऐसी कुमतियां जन्म लेती हैं, वहां से सुख सम्पत्ति किनारा कर जाती है। इसलिए घर के हर एक प्राणी को यह समझ कर कि जैसा जीव हमारा है वैसा ही जीव घर के प्रत्येक प्राणी में है, अनुकूल व्योहार करना चाहिऐ। ऐसा न करने

पर आपस में घरों के अन्दर कुमतियां पैदा हो जाती हैं ।

जहां सुमत तहां सम्पत्ति नाना,
जहां कुमत तहां विपत्ति निधाना ॥

पुष्प नं० ११

इस आफत भरी दुनिया में चैन से कैसे रहा जाय ?
दो मित्रों की बातचीत ।

इनमें से हैं भास्करानन्द जी वैदान्ती और दूसरे है दयालानन्द जी कृषक, । ये दोनों इस विषय को लेकर बातचोत कर रहे हैं कि इस आफत भरी दुनिया में चैन से कैसे रहा जाय ।

भास्करानन्द जी :—

दुनिया के धन्धे औ फन्दे गोरख धन्धे से तंग हुवा ।
नहीं तन को चैन नहीं मन को चैन, दिन रैन क्लेश में
फंसा हुआ ॥
लात मार दूँ दुनिया को कर्मों का कर दूँ मुंह काला ॥
नहीं रहे बांस नहीं बजे बांसुरी सहज मिले यों छुटकारा ।

दयाला नन्द जी :—श्रीमान जी 'लात मार दूं दुनियां को' क्या इससे आपका ये मतलब है कि घर बार छोड़ दूं और क्या 'कर्मों का मुंह कर दूं काला' से मतलब है कि कर्मों का सन्यास कर दिया जाय।

भास्करानन्द जी :—जी हां, मेरा यही मतलब है।

दयालानन्द जी :—भाई इस बारे में हमारा संत मत तो आपके मत से बिल्कुल विपरीत है।

दुनिया में रह कर ये कहना दुनिया को हमने छोड़ दिया।
यह धोखा है, यह धोखा है, यह धोखा नहीं तो और है क्या?
खाता-पीता, चलता-फिरता, मांगे भिक्षा, लेता दक्षिणा।
और कहे, कर्म सब त्याग दिया, यह धोखा नहीं तों और है क्या?
इस झूठे त्याग भाव में आ, बरबाद देश को कर डाला।
जो सबको अन्न खिलाता था आज औरों का मुहताज हुआ॥
अमरीका ने जैसे तैसे कुछ थोड़ा बहुता अन्न दिया।
सोना भी लिया अहसान किया और सर पर कर्जा थोप दिया॥
मालिक न करे कहीं कहत पड़े, तो फिर हम पर बीतेगी क्या?
सोना तो पहिले ही दे डाला, अब क्या देकर खाओगे क्या?

भाई हमारो तो राय यह है कि :—

काम किये जा, काम किये जा, काम किये जा चित्त लगा।
काम जिन्दगी, काम बंदगी, काम ही दे तेरा काम बना॥

जहां जिन्दगी, वहां जरूरत, जहां जरूरत वहां इच्छा।
इच्छा से ख्यालात उठे, मन काम नतीजा ख्यालों का॥

यानी जिन्दगी के साथ काम का लगा रहना मजबूरी है।

मजबूरी है, मजबूरी है, मजबूरी है, मजबूरी है।
जिन्दा बन्दा कुछ काम करे, मजबूरी है, मजबूरी है॥
यह काया भी मजबूरी है, और माया भी मजबूरी है।
माया विच काया फंस जाना मजबूरी है, मजबूरी है॥
यहां आना भी मजबूरी है, और जाना भी मजबूरी है।
जिन्दे बन्दे को भूख लगे तो, खाना भी मजबूरी है।
खाने को दाने पाने को, करना धन्धा मजबूरी है॥
धन्धे, करते करते, फन्दे पड़ जाना भी मजबूरी है।
ये फन्दे नहीं हैं रसरी के नहीं लोहे की जंजीरों के।
ये फन्दे साधो चिन्ता के जो मन के गल पर हैं पड़ते॥
कोई मौज कहे मजबूरी को, कोई कोई कुदरत कह देता है।
कोई नेचर नाम धरे इसका, दर असल तो ये मजबूरी है॥
जो मजबूरी को जान गया, झट मजबूरी से पार गया।
वरना रहना मजबूरी में, मजबूरी है, मजबूरी है॥

जहां यह मजबूरी पैदा होती है वहां पहुंचने के लिए जरूरी है नाम की भक्ति या सुरत शब्द योग। जिसका हाल पूरी तरह पुष्प नं० ४ में दिया है।

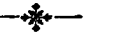

पुष्प नं० १२

संत मत के साधन का रहस्य

निकल तन से फिर तू मन से, निकल बेख्याली में आ।
आत्मा के निकट अज खुद पहुंचता तू जायेगा॥
आत्मा में ठहर कुछ आनन्द ले, आनन्द ले।
छोड़ दे आनन्द को, निज रूप दर्शन पायेगा॥
आनन्द रचना में रहे, त्रिपुटी बसे आनन्द में।
भेद दे आनन्द त्रिपुटी, निज रूप दर्शन पायेगा॥
निज रूप दर्शन पायेगा, निज रूप दर्शन पायेगा।
शान्ति का दौर, तुझको, दौड़ कर खुद आयेगा॥
अकथ ब्रह्मानन्द का अनुभव, तुझे हो जायेगा।
अनुभव तुझे हो जायेगा, निज जात में रल जायेगा॥

नोट :—(१) हमारी जात अनाम है, अरूप है, यानि शान्ति है या खामोशी है और इसलिए वह अकथ हैं।

(२) आनन्द त्रिपुटी में :— (१) आनन्द। (२) आनन्द का लेनेवाला। (३) आनन्द का लेना। ये तीनों मिल कर आनन्द त्रिपुटी बनती है और इसलिए यह रचना की वस्तु है।

(३) बे-ख्याली माने हैं :—निःसंकल्प समाधि या निर्विकल्प समाधि।

(४) ब्रह्मानन्द : सार शब्द में लीन होना या शब्द ब्रह्म में लीन होना।

पुष्प नं० १३

मन चंचल कहा न माने रे, मैं कौन उपाय करूं ?

यह एक सवाल है जो कुछ इने गिने महापुरुषों को छोड़ सारी दुनिया में समरथ मनुष्यों के दिलों में जाने या अनजाने उठता रहता है, एक जिज्ञासु इसी सवाल को लेकर बहुत से भक्तों, भजनानन्दियों, साधुओं और महात्माओं के पास गया और उनको जो उत्तर मिले वह नीचे दर्ज किये जाते हैं :—

सबसे पहले वह गया एक कृष्ण भगवान के मन्दिर में यहां नियमपूर्वक नित्य आरती होती है। भगवान को नहलाया जाता है, वस्त्र पहिनाये जाते हैं, भोजन कराया जाता है, शयन कराया जाता है

व आरती उतारी जाती है। उसने सोचा कि यह पुजारी जी महाराज, जो कृष्ण भगवान की सेवा करते हैं, मेरे सवाल का "मन चंचल कहा न माने रे मैं कौन उपाय करूं" ? का जवाब इनसे मिल जायेगा और उसने पुजारी के सामने यह सवाल रखा। तो पुजारी जी मुस्करा कर कहने लगे कि भाई, मैं यह पूजा पत्री तन से करता हूं और उसका मुझे वेतन मिलता है, मन मेरा भी आपकी तरह चंचल रहता है और कहने लगे :—

ऐसो यह चंचल मन, प्रभु की शरण नहीं लेवे।
जागती दशा में मन दूर २ जावे है, मन दूर दूर जावे है।

और सोते हुये भी पापी स्वप्न में विघन करले, ऐसा यह चपल अब आगे चला। एक पुरुष को निराकार प्रभु से ध्यान लगाये देखा। उनके पास वह जिज्ञासु बैठ गया और उनका ध्यान टूटा तो यह भी सवाल उनसे किया तो उन्होंने उत्तर दिया।

मन ही ध्यान करन को बैठे, मन ही करे उत्पात।
जानत है पर मानत नाहीं, है ऐसो बद जात, कहूं मैं कासो
मन की बात।
इधर उधर घेरूं धारूं, निकल हाथ से जात।
कहूं मैं कासो मन की बात॥

इसके बाद उस जिज्ञासु को पता लगा कि माघ मेले इलाहाबाद मैं एक अखिल भारतीय हिन्दु सभा का अधिवेशन महामना पंडित मदन मोहन मालवीय के सभा पतित्व में हो रहा है और जिसमें हिन्दुओं के भिन्न २ संप्रदाय के लोग व महात्मा लोग हिस्सा ले रहे हैं। उस सभा में यह विषय रखा गया था कि अपने २ संप्रदाय के अनुसार उस संप्रदाय के विद्वान लोग यह प्रकट करें कि वह आत्मा व परमात्मा को किस रूप में मानते हैं। खण्डन मण्डन की इजाजत न थी।

अधिवेशन का समय चार दिन का रखा गया। अलग अलग संप्रदाय के लोगों ने अपना २ मत व विचार आत्मा व परमात्मा के विषय पर प्रकट करना आरम्भ किया और जो विद्वान उठता, अपने मत की पुष्टि इस प्रकार करता था कि सुनने वाले लोग समझते थे कि जो कुछ यह कह रहा है वह ठीक है। इत्तफाक से सब वक्तागण ३ दिन में ही अपने २ मत को प्रकट कर गये। अब आधा दिन बाकी रहा। इस जिज्ञासु ने सोचा कि यह साधु संत महात्मा लोग जो विद्वानों से अलग-अलग एक

कतार में बैठे हैं उनके मुख से भी कोई अमृत वाणी सुनना चाहिये और उसने पहले महात्मा के चरण पकड़ कर कहा, महाराज कुछ आप भी मुखारबिन्द से फरमाईये। तो वह बोले :—

जेते मत संसार में, सबको एक ही सार।
जाके हिरदे वह बसै, ताको बेड़ा पार॥

लोगों ने बड़ी खुशी से तालियां बजाईं, धन्य २ की आवाज़ें आईं कि इस महात्मा ने तो ३ दिन की चर्चा को एक ही वाणी में सब मतों का सार बता दिया। अब दूसरे के पैर पकड़े कि महाराज, आप भी कुछ दया करो। महात्मा बोले भाई मैं डरता हूं कि मैंने कुछ कहा तो यह पहले वाले महात्मा नाखुश हो जावेंगे। महात्मा बोला-भाई नाखुश होने की क्या बात है? जब तीन दिन सब बोले तो आपको भी बोलने का पूरा अधिकार है। तो दूसरा महात्मा बोला कि :—

साहब. तेरी साहबी, सब घट रही समाय।
ज्यों मेहन्दी पात में, लाली लखी न जाय॥

इस पर और खुशी की तालियां बजीं और पहले महात्मा की बात कट गई। कि तुमने कौन सी नयी बात कही। वह तो पहले से ही सबके हृदय में लाली

की तरह बसा हुआ है। अब तोसरे महात्मा के पैर पकड़े यह सोच कर कि महात्माओं की एक-एक वाणी में लाख २ रूपया को बात छिपो हुई हैं। तीसरे महात्मा ने कहा कि भाई, मैंने कुछ कहा तो ये दोनों नाराज हो जायेंगे पर खैर सुनो :—

घट-घट में मेरा सांईया, खाली घट ना कोय।
बलिहारी घट वाहि कि, जा घट परगट होय॥

जिस तरह हर लकड़ी के अन्तर अग्नी बसी हुसी है पर जब तक उस अग्नी को प्रकट नहीं कर लेते तब तक चाय भी नहीं पका सकते है, इसी तरह जब तक घट-घट में बसे हुए प्रमात्मा को हम प्रगट नहीं कर लेते, कोई आत्म-कल्याण का लाभ नहीं उठा सकता। आगे एक नानक पन्थो महात्मा बैठे हुए थे। उनके पैर पकड़ने पर बोले अच्छा भाई, हम भी कुछ सुनायेंगे। कहने लगे कि :—

घट में है, सूझत नहीं. लानत ऐसी जिन्द।
नानक या संसार को. भयों मोतिया बिन्द॥

घट से कोई वस्तु दूर नहीं। ऐसी जिन्दगी को लानत है कि वह घट में रहते हुए को भी देख नहीं

पाता । आगे एक कबीर पन्थी महात्मा बैठे हुए थे उनसे पूछने पर वो कहने लगे कि :—

यह रस्ता है अटपटी, झटपट लहे न कोय।
जो मन की खटपट तजे, तो चटपट परगट होय।

भाई, यह मन की खटपट उसको प्रगट होने नहीं देती । तो यही बात यहां आ गई। जो सवाल जिज्ञासु लेकर चले थे । अब अगले माहत्मा के पैर जिज्ञासु ने पकड़े, जिन के सब सफेद बाल थे। और बोले कि महाराज जी, आप भी अपने विचार इस विषय पर प्रगट करें । वे कहने लगे, भाई हमने ये सफेद बाल मन की चंचलता हरने की कोशिश करने में ही पका लिये हैं, शर शैंया पर हम सोये, धूनियां हमने रमाईं, एक पैर पर मुद्दत तक खड़े रहे, और ज़ाने क्या-क्या किया और भाई हमारा अनुभव इस विषय में यह है कि :—

मनवा खटपट ना तजे, कीन्हे बहुत ऊपाय।
खटपट तजने की कहो, तो खटपट करत सिवाय।

आगे और महात्मा बैठे हुए थे, जब उनसे अनुभव पूछा गया तो कहने लगे :—

यह मन साधो बिगड़ बगाहा।
ए मन सांड तोही कहां बान्धो,
आगे नथ न पीछे पगहां॥

आगे एक ऋषि भेस में महात्मा बैठे हुए थे। जब उससे जिज्ञासु ने पूछा तो कहने लगे कि :—

ऋषि, मुनि, योगी, तपी, कीन्हे जतन महान।
मनवा बस आयो नहीं, पढ़ लेओ शास्त्र पुराण॥

कहने लगे कि :—

काहू न मन बस कीन्हा जगत में,
शृंगी ऋषि से योगी ज्ञानी, विषय विकार न जाना।
पठई नारी भूप दशरथ ने, पकड़ अयोध्या आना॥

शृंगी ऋषि की कथा इस प्रकार है कि महाराज दशरथ के संतान उत्पन्न नहीं होती थी और वह इस समस्या को लेकर पागल हुआ था। ज्योतिषियों व पंडितों से पूछा गया तो उन्हों ने बताया कि महाराज अगर पुत्रेष्टि-यज्ञ करें और आखिर की चार आहुतियां श्री शृंगी ऋषि से दिलवायें तो आपके चार पुत्र हो सकते हैं। राजा दशरथ ने अपने राज्य में ढिंढोरा पिटवा दिया कि जो कोई श्री शृंगी ऋषि को अयोध्या लाये उसको दस हजार रुपये इनाम मिलेगा और जिसने बीड़ा उठाया अगर वह ना ला सका तो तोप के गोले से उड़ा दिया जायेगा। रुपये के लालच वश तो ऐरे गेरे पंच कल्याणी बहुत से आये और जब तोप के गोले की

बात सुनते, हवा खिसक जाती। अंत में एक वैश्या ने बीड़ा उठाने की हिम्मत की और राजा से बोली कि महाराज आपकी दोनों शर्त्तें मंजूर हैं पर एक शर्त मेरी माननी पड़ेगी कि आप मुझे पांच हजार रुपये पेशगी दें ताकि मैं अपने बच्चों का इन्तजाम करके जाऊं। न जाने इस काम में कितने दिन लग जावें। महाराज ने इसको मन्जूर कर लिया और अपने मंत्र को आज्ञा दी कि खुफिया पुलीस के जरीये यह पता लगा कर दो कि श्रृंगी ऋषि किस वन में या पहाड़ पर तपस्या कर रहे हैं और उस जगह तक इस वैश्या को पहुंचा दिया जावे। वैश्या ने मौके पर जाकर देखा—एक बहुत गहरी कन्दरा है उस में ऋषि जी बैठकर तपस्या करते थे और उस कन्दरा के ऊपर एक वृक्ष था। यह भी पता लग गया था कि ऋषि जी एक बार प्रातः में निकलते हैं और उस वृक्ष की छाल को तीन बार चाट कर वापिस कन्दरा में उतर जाते हैं। वैश्या कन्दरा के आस पास छिपकर बैठ गई। सुबह ऋषि जी निकले और देखा कि तीन बार वृक्ष की छाल को चाट कर वापिस कन्दरा में उतर गये। वैश्या

देखकर बहुत खुश हुई और दूसरे दिन उसने हलका सा गुड़ का शर्बत बनाया और वृक्ष की छाल पर चुपड़ दिया। आज ऋषि जी ने उस छाल को तीन बार चाटने की बजाय पांच दफा चाटा। दूसरे दिन वैश्या ने पतला सा हलवा उसी जगह लगा दिया तो उस दिन ऋषि जी ने वृक्ष की छाल को आठ बार चाटा। इसी प्रकार वह हलवे की मात्रा बढ़ातो गई और ऋषि जी स्वाद लेकर चाटते रहे। जब वैश्या ने देखा कि ऋषि जी के तन में ताकत आगई तो एक दिन ऋषि जी जबकि हलवा चाट रहे थे, वैश्या पैरों में जा गिरी, ऋषि जी चकित हुए, पूछा, तू कौन है व किस लिये आई है? कहने लगी— महाराज, हमारे देश में दुर्भिक्ष पड़ रहा है मैं अपनी जान बचाने के लिये यहां करीब २ महीने से ठहरी हुई हूं और कन्द मूल फल खा कर गुजारा कर रही हूं। ऋषि जी बोले—यह छाल पर कौन क्या लगा जाता हैं? वैश्या बोली, इस की मैं ही अपराधिनो हूं पर एक बात अर्ज करना चाहती हूं कि अब जाड़ा बहुत पड़ने लगा है। रात को मैं ठिठुर जाती हूं, अगर आज्ञा हो तो मैं भी इस गुफा में

रहने लगूं । ऋषि जी ने आज्ञा दे दी । काफी दिन रहते २ तीन बच्चे पैदा हो गये । अब एक दिन उसने ऋषि जी से कहा कि महाराज, हम और आप तो कंद मूल खाकर गुजर कर लेते हैं, इन बच्चों का गुजारा इनसे नहीं हो सकता । चलिये, अयोध्या चलें । महाराज दशरथ बड़े दयालु हैं । वह हमारे गुजारे का कुछ न कुछ इन्तजाम कर ही देंगे । और वह तीनों बच्चों को साथ लेकर अयोध्या जी की तरफ चल पड़े । हमने उनको अयोध्या जाते हुए तो नहीं देखा, लेकिन एक ऐसा चित्र जरूर देखा है, जिस के ऊपर लिखा था कि 'श्री श्रृंगी ऋषि का अयोध्या गमन' चित्र में ऋषि जी के कन्धे पर एक बालक, दूसरा बालक वैश्या के कन्धे पर और तीसरा बालक दोनों की उंगलियां पकड़ कर पैदल चल रहा था । यह कथा झूठ है या सत्य, इसकी जिम्मेवारी पुराण लिखने वालों पर है । इस तरह भरत, पराशर ऋषि, यहां तक कि शिव जी व ब्रह्मा को भी ऐसे दोष आरोपण किये गये हैं कि समय आने पर वे लोग भी विचलित होगये और चंचल मन के गुलाम बन गये । श्री पराशर जी के लिये कहा जाता है कि :—

सूखे पात पवन सुत भक्तै, पाराशर से ज्ञानी।
वह भी रूप देख बनिता का, काम कन्दरा ठानी॥

तो आगे एक सादा कपड़े पहने हुए सादा रूप में यानी गृहस्थी के रूप में एक संत महापुरुष बैठे थे। जिज्ञासु ने यह जान कर कि यह क्या जानता होगा उसकी तरफ से मुंह मोड़ा ही था कि संत ने आवाज लगाई, जिज्ञासु जी, इधर आईये। संत ने पूछा कि आप इस सवाल को क्यों हल करना चाहते हैं? उसने कहा—महाराज, मुझे बचपन से भक्ति का शौक रहा है और नाना प्रकार की भक्तियां, जप, तप, तीर्थ व्रत किये हैं, परन्तु भजन में जब मैं लगता हूं तो आखिर में क्या पाता हूं कि अगर आधा घन्टा भक्ति, ध्यान या भजन किया तो बीच में ही बिना जाने मन न मालूम कहां पहुंच जाता है और मुश्किल से आधे घन्टे भर में पांच मिनट उस क्रिया में लगता है। वे २५ मिनट तो फजूल गए बातों में यानी गुनावनों में मन फिरता हैं। संत बोला—अब तक इन महात्मा व भक्तों से जो उत्तर मिले, क्या वह आशा जनक थे? जिज्ञासु बोला—महाराज, मेरा हाल तो इन बातों को सुनकर

यह हो गया कि चौबे जी, चले छिब्बे जी बनने को, और दूबे जी भी न रहे। संत बोले कि :—

मनवा बस में करन को, केवल एक उपाय।
अती सुन्दर अरु अती सुगम, संतन दियो रे बताय॥

नोट :—अब इसके आगे पूरी व्याख्या के लिए पढ़िये पुष्प नं० १, २१ व २२।

इस विषय पर परम दयाल पं० फकीर चन्द जी महाराज का अनुभव

मैं इस लेख को सत्संग में सुन रहा था। ख्याल आया कि मैं अपना अनुभव भी कह जाऊं। मेरे साथ यह बीती। मन वश में नहीं आता था। कैसे आया? श्री कृषक या अन्य जो मुझे गुरु मानते हैं उनके अनुभवों ने कि मेरा रूप उनकी मदद करता है, सुरतें चढ़ाता है, अंत समय में ले जाता है, दवाईयां बताता है आदि-आदि और मैं नहीं होता, इससे मुझे यकीन हो गया है कि जो कुछ मेरे अन्दर भी विचार, भाव और शक्लें बनती हैं वे वास्तव में नहीं हैं केवल संस्कार हैं। इसलिए अब मैं यह जो मेरा मन है उसके किसी खेल को सत नहीं मानता और अपना साधन केवल सुरत से अपने आधार आदि-शब्द की तरफ लगाता हूं। मैं इस अनुभव के आधार पर इस

मन के चक्कर से निकल सका। गुरु नाम अनुभव, ज्ञान और विवेक का है। क्योंकि यह ज्ञान और अनुभव दाता दयाल की दया से मुझको कृषक जैसे चन्द भाईयों से हासिल हुआ, इस लिए मैं इस उम्र में इन सबका कृतज्ञ हूं। मन को वश में करने का लाख कोई यत्न मन से करे, जप से करे, तप से करे, सुमिरन से करे, ध्यान से करे, एक आरजी सुख मिलेगा। इसलिए संतों के मार्ग में सुरत-शब्द योग है। भक्ति उस मालिक की या अपनी ज़ात की या परम तत्व की जब तक सुरत से कोई नहीं करेगा, वह मन के चक्कर से नहीं निकल सकता। मैं अब भी जब सच्चे सद्गुरु को भूल जाता हूं यानी उस अनुभव और ज्ञान को भूल जाता हूं तो कभी-कभी मन के चक्कर में आ जाता हूं।

मन को मन से कभी नहीं मारा जाता। हाँ! मन के साधन से मानसिक शक्ति बढ़ जाती है और संसार में स्मृद्धि और सिद्धि शक्ति आ जाती हैं। इन्सान का ज़ीवन सुख से गुज़र सकता है यदि किसी गुरु की कृपा से शिव संकल्प रखने की आदत आजाय।

—फकीर।

पुष्प नं० १४

इष्ट व पूर्ण शरणागति

बिना इष्ट सब भ्रष्ट है लोक और परलोक। यह लोक या संसार जिसमें हम रह रहे हैं, यह मोहताजगी का देश है। यानी हमारी आकांक्षायें और अभिलाषाऐं पूरी तरह से पूरी नहीं हो पाती। हरेक मुनुष्य को सुख पाने की अभिलाषा रहती है। संसार में कोई व्यक्ति न मिलेगा जो यह दावा कर सके कि उसको सुख की अभिलाषा नहीं। साथ ही शायद ही ऐसा कोई व्यक्ति मिले जो दावा करता हो कि उसको दुनियां में सब प्रकार के सुख प्राप्त हैं। हमारे बुज़ुर्ग कहते चले आये हैं कि हमारे सुख ६ प्रकार के होते हैं :—

प्रथम सुख निरोगी काया, दूजा सुख घर होय धन माया।
तीजा सुख पतिव्रता नारी, चौथा सुख पुत्र आज्ञाकारी॥
पंचम सुख पंचम मोह जाना, छठा सुख राज्य सम्माना॥

इन सुखों को पाने के लिये ही हम रात-दिन संसारी कामों में जुटे रहते हैं। सब कामों के करने का आशय होता है सुख का पाना। पर :—

सुख की अभिलाषी दुनिया में, नहीं सुख ही मिला नहीं कोई सुखी।
कोई अन्न का दुखी, कोई धन का दुखी. कोई तन का दुःखी, कोई मन का दुःखी॥
सुख की खातिर हम व्रत किये, तीरथ भी गये और और धाम किये।
काशी छानी, काबा देखा, नहीं सुख ही मिला नहीं कोई सुखी॥
वाणी भी पढ़ी, सतसंग भी किया, अभ्यास किया, आनन्द भी लिया।
जब दुनियां से आंखें चार हुईं, न सुख ही रहा, नहीं कोई सुखी॥

कबीर साहिब अपना तजुर्बा बताते हैं कि :—

कबीर अपने दुःख को कासो कहिये जाय।
जा सू मैं इक दुःख कहूं, सोलह देह बताय॥

उपर की वाणियो से पूरी तरह सिद्ध हो जाता है कि संसार में ६ सुखो में से पूरी तरह से किसी को नहीं मिल पाते। किसी न किसी सुख की कमी हरेक व्यक्ति महसूस करता हैं। इस कमी को पूरा करने के लिये हरेक व्यक्ति को सहारा ढूढ़ना पड़ता है। वास्तव में सहारा लेना ही भक्ति है। जो सहारा लेता है, वह भक्त है और जिसका सहारा लेता है वह इष्ट

हैं। इसलिए सिद्ध हुआ कि हरेक आदमी को कोई न कोई इष्ट बनाना पड़ता है। कोई मूर्तियों को इष्ट बनाता है कोई मसजिद को, कोई गिरजा घर को, कोई संत महात्मा की वाणीयों को, कोई महात्मा को और कोई संत को। इष्ट नाम आर्दश का है, जिसको फारसी में महराजे तमन्ना कहते हैं। इसलिए इष्ट एक ही होना चाहियें।

एक ही साधे सब सधे, सब साधे सब जाय।
जो तू सींचे मूल कों फूले फले अधाय।।

जो लोग एक की जगह कई इष्ट बना लेते है, वे पूर्ण भक्त नहीं बन सकते। जैसे कि एक पतीब्रता स्त्री दूसरा पति बनाने पर व्यभिचारीणी कहलाती है वैसे ही इन कई इष्ट बनाने वालो का हाल होता है। चूंकि यह संसार मोहतजगी का देश हैं इसलिए हर एक व्यक्ति मजबूर है कि कोई न कोई इष्ट बनाये। जंगलों में रहने वाली जातियां भी इष्ट बनाती हैं। कोई पीपल के वृक्ष को, कोई कदंब के वृक्ष को, तो कोई बड़ के वृक्ष को। तो क्या इष्ट बनाने से ही हमारे सुखों की पूर्ति हो जाती है ? नहीं। हरगिज नहीं। जिसका इष्ट पर पूरा विश्वास नहीं होता वह पूरा फायदा नहीं उठा सकता। विश्वासम् फलदायकम्।

लोग विश्वास करते है कि हमने आज ४ आने की मिठाई इष्ट पर चढ़ाई, फूल माला चढ़ाई, घन्टा बजा दिया, कथा करादी, कीर्तन करा दिया। हम पूरे विश्वासी हैं। यह सब कुछ विश्वास नहीं। असली विश्वासी वह है जो पूर्ण विश्वास कर लेता है कि मेरा इष्ट पूर्ण है और मेरी मनोकामनाओं को अवश्य पूर्ण करेगा। ऐसे विचार से रहना कि मेरी कामनाएं पूरी होगी या नहीं या कब होगी, या कैसे होगी, यह पूर्ण विश्वास नहीं। इतिहास बताता है कि जिन्हों ने मिट्टी के टुकड़े पर, मिट्टी की मूरत पर या पत्थर या और धातुओ की मूर्ति पर पूर्ण विश्वास कर लिया कि यह परमात्मा है पूर्ण पुरुष है, मेरी कामनाए अवश्य पूरी करेगा, उन्होंने अपनी कामनाए पूरी करलीं। एक कथा है, झूठी या सच। एक जमाने में नामदेव नाम के भक्त हुए हैं। इनके बारे में कहा जाता है कि वे कृष्ण के पुजारी के धेवते थे। उनका नाना ४ रोटी बनाता और कृष्ण की मूर्ति के सामने रख देता वह आगे पर्दा लगा देता और कहता रहता, मैं कृष्ण भगवानको भोग करा रहा हूं। एक दिन उसके नाना को कहीं जाना था। लिहाजा वह भोग

लगाने का काम धेवते के जिम्मे करके चला गया। धेवते ने उसी तरह की चार रोटी बनाईं और उसी तरह कृष्ण भगवान को भोग लगा दिया। थोड़ी देर के बाद परदा उठा कर देखा तो रोटी ज्यों की त्यों रखी हुई थी। पर उसे तो यह विश्वास था कि कृष्ण भगवान रोटियां खा लेते हैं। इसलिए मूर्ति से अकड़ कर बोला कि मेरे नाना की रोटियां बनाई हुईं तो तू खा जाता था, मेरी बनाई हुई रोटियां क्यों नहीं खाईं? परदा लगाये हुए और एक मोटा सा डन्डा हाथ में दिखलाते हुए कहा कि मैं सीधी तरह कहता हूं कि जैसे नाना के हाथ की रोटियों को खाता था, वैसे ही मेरे हाथ की बनी हुई रोटी खा, नहीं तो मेरा यह डन्डा होगा और तेरा सिर। थोड़ी देर बाद जब पर्दा उठाता है तो देखता है कि कृष्ण भगवान आये हुए हैं और रोटियाँ खा रहे हैं। क्या कृष्ण भगवान ने डन्डे से डर कर रोटियां खाईं? नहीं। उसके विश्वास से मोहित हो कर। इसी तरह जिन भक्तों को अपने इष्ट पर पूरा विश्वास नहीं होता वे अपनी कामनाओं को पूरी करा नहीं पाते। इसलिए अपने इष्ट में पूर्ण

विश्वास होने की जरूरत है। परन्तु वे इष्ट जो संसारी पदार्थों के रूप या शकल में बनाये जाते हैं वह केवल संसारी चीज़ें दे सकते हैं। वह आत्मानंद या शान्ति, या मुक्ति नहीं दे सकते। शान्ति और मुक्ति की इच्छा रखने वालों को वक्त गुरु को इष्ट बनाना पड़ेगा। अथवा ऐसे संत पुरुष को इष्ट बनाना पड़ेगा जो शान्ति और मुक्ति का खुद अधिकारी बन चुका है। वह पुरुष जो शान्ति और मुक्ति का अधिकारी नहीं बना है, वह हमको कैसे शान्ति और मुक्ति का मार्गदर्शन करा सकता है अथवा शान्ति और मुक्ति दिला सकता है ? ऐसे पुरुष कोई संत व परम संत ही हो सकते हैं जिनमें कि यह गुण मौजूद हों।

संत की पहिचान

उधर है लीन मालिक में, इधर हम तुम में रहता हो।
हमारी पीर हरने को, हजारों पीर सहता हो॥

वह महात्मा या संत जो मालिक में लीन रहते हों और हमें छोड़ कर जंगल पर्बत व गुफाओं में रहते हों वह भी हमारी पीर को नहीं हर सकते। इसलिए इष्ट बनाने योग्य नहीं। इष्ट से पूरा

फायदा वह उठा सकते हैं जो उसमें पूर्ण विश्वास रखते हों। साथ ही अपने इष्ट के पूर्ण शरणागत भी हों। क्योंकि संतों ने कहा है कि :—

खुशी से रहना है, गर तुझ को, पहले अधिकारी बन जा।
अधिकारी वह नहीं खुशी का, जो पूर्ण शरणागत ना॥
शरणागत बस शरणागत, हां पूर्ण शरणागत बनजा।
खुशी न चूमे पांव तेरे तो, जिम्मेदार हमें ठहरा॥

पर शरणागत की एक कसौटी होती है जिसको हृदय पर लगा कर कोई देख सकता हैं कि मैं पूर्ण शरणागत हूं या नहीं और वह कसौटी यह है :—

शरणागत जब हुआ किसी का, तुझको बन्दे चिन्ता क्या।
जब तक चिन्ता हिय में व्यापे, धोखा है शरणागत ना॥

इसी तरह :—

जो जाके शरणी बसे, ताको ताकी लाज।
जल ऊपर मछली चढ़े, बहे जात गजराज॥

अथवा पानी कितने ही वेग से बह रहा हो, मछली को पानी की शरण में रहते-रहते यह अधिकार प्राप्त हो जाता है कि पानी को उस मछली को अपने सिर पर होकर रास्ता देना पड़ता है। अथवा आप देखेंगे कि मछली उधर को ही चढ़ती है जिधर से पानी वेग से आ रहा हो, जबकि

बड़े दिग्गज हाथी पानी के वेग से नीचे की ओर वह जाते हैं। जैसे कि लड़की पैदा तो होतीं हैं हमारे घर में और शादी न हो जाने तक हमारे घर में ही उसका पालन-पोषण होता है परन्तु शादी हो जाने पर अपने पती के शरणागत हो जाने पर दूसरे के घर को मालकिन बन जाती हैं। इसलिए इष्ट बनाने के साथ ही साथ, उसमें पूर्ण विश्वास रखते हुए पूर्ण शरणागति होने पर ही अपनी मनोकामनाएं पूर्ण हो सकती हैं। जो किसी पूर्ण संत को अपना इष्ट बनाते हैं उनको संसारी खुखों के साथ-साथ परलोक का सुख भी जैसे मुक्ति या शान्ति या ब्रह्मानन्द का भी अनुभव हो जाता है और फिर वे इस संसार में जीवन मुक्त अवस्था में या विदेह अवस्था में रहते हुए जन्म-मरण के दुःख से भी बच जाते हैं।

पुष्प नं० १५

सुख दुःख आनन्द और शान्ति

सुख दुःख मन का विषय है। यानि सुख दुःख का बोध मन को होता है और आनन्द आत्मा का विषय है। यानि आनन्द को अनुभव करती है आत्मा और शान्ति विषय है सुरत का। अथवा शान्ति सुरत को प्राप्त होती है।

(१) दुःख सुख। (२) आनन्द विषय आत्मा का। (३) शान्ति।

(१) दुःख सुख :—जिस वस्तु को हम अपने अनुकूल पाते हैं उसको सुनकर, देखकर, सूंघकर चखकर या छू कर हमारा मन सुख का बोध करता है और जिन वस्तुओं को अपने प्रतिकूल हम पाते हैं तो हमारा मन सुनकर, देखकर, सूंघकर, चखकर या छूकर दुःख का बोध करता है। हम अपना बीता हुआ वाक्या लिखते हैं जिससे यह पूर्णतयः सिद्ध हो जायेगा।

मैं अलीगढ़ जिले का रहने वाला हूं और मेरा फार्म अलीगढ़ से २९ मील की दूरी पर पक्की सड़क पर

स्थित है। जो हमको आमदनी होती थी उसमें से घर के खर्च व फार्म के खर्चे के लिये अपने घर रखकर बाकी फालतू रुपया चोरी व डकैती के भय से अलीगढ़ के स्टेट बैंक में जमा कर देते थे। एक दिन अकस्मात एक हजार रुपये की जरूरत पड़ गयी। मैं अलीगढ़ बैंक से रुपया निकलवाने गया। रुपया निकलवाते-निकलवाते शाम के पांच बज गये और कुछ घर का सामान खरीदते हुए मैं बस के अड्डे पर छः बजे पहुंचा और वहां से सवा छः बजे की बस में सवार होकर अपने घर जो अलीगढ़ से तीस मील दूर है को चल दिया। हमारी बस सिर्फ दस मील ही चलने पाई थी कि बस के पहिये का टायर बुरी तरह से बर्स्ट हो गया और टयूब में भी खराबी आ गई। उसको ठीक करने में लगभग डेढ़ घन्टा लग गया। फिर बस आगे दो अड्डों पर आधा-आधा घन्टा ठहर कर हमारे गांव से एक मील दूर जो तीसरा अड्डा था, वहां रुकी। उस वक्त करीब साढ़े दस बज चुके थे। रात अन्धेरी थी और आसमान पर बादल छाये हुए थे। कभी-कभी बिजली चमक जाया करती थी। वह अड्डा जिस पर मैं उतरा जंगल में था। मैं

अपने घर को, जो वहां से एक मील दूर था, चल दिया। रास्ते में एक दो दफा भय लगा। क्योंकि रुपये साथ में थे। लेकिन फिर भी मैं हिम्मत बांध कर चलता ही रहा। जब करीब आध मील दूर पहुंचा तो सामने एक आदमी नजर आया, जिसके पास भाला था और उसको वह ऊपर को उठाये हुए था। मेरी हवा खिसक गई और दिल में विचार हुआ कि क्या करना चाहिये। उस वक्त मेरी बुद्धि ने यह निर्णय किया कि इसने देख तो लिया ही है, अगर तुम पीछे को लौटे तो यह भागकर हमला करेगा और भाले की चोट भी करेगा। इसलिए यह प्लान दिमाग में आया कि रुपयों को हाथ में ले लो और चलो। जब इसके पास पहुंचो तो रुपयों को उसके आगे बखेर दो, वह उनको इकट्ठे करने में लग जायेगा। तुम भाग कर निकल जाना। इस तरह जान तो बच जायेगी। मैं बहुत डरता-डरता बहुत ही धीमी रफ्तार से आगे बढ़ा। अभी उससे ३-४ कदम दूर था तो इत्तफाक से बिजली चमकी तो देखा कि जिसको में डकैत समझ रहा था वह तो एक सरकंडे का झुण्ड था और एक सरकंडा ऊपर को

खड़ा हुआ था जिसको मैंने भाला समझ लिया था। वास्तव में वह दुःख झुण्ड में नहीं था। वह तो दुःख इस बात का था कि मैंने उस झुण्ड को डकैत समझ कर अपने प्रतिकूल पाया था और जब बिजली के चमकने पर देखा कि झुण्ड था तो अपने अनुकूल पा कर खुशी हुई। इसलिए दुनियां की किसी भी वस्तु में न दुःख है और न सुख है। जब हमारा मन अनुकूल पाता है, सुख महसूस करता है और प्रतिकूल पाता है तो दुःख महसूस करता है। दूसरी मिसाल यह दी जा सकती है कि बारिश हो रही है, किसान खुश हो रहा है और कुम्हार जिसने बड़ी मेहनत से कच्चे बर्तन बनाये हैं या ईंट पाथने वाले, जिनकी लाखों ईंटों के चट्टे लगे हुए हैं बरसात में गल जाने के भय से दुःखी हो रहे हैं। तो कहां रहा दुःख सुःख ?

(२) आत्मा आनन्द :—आनन्द है विषय आत्मा का। आनन्द क्या है ?

सुःख दुःख से एक परे परम सुख, वह आनन्द कहाई।

इसलिये जब तक अपनी सुरत को कोई मन से ऊपर नहीं ले जाता, वह आनन्द नहीं पा सकता।

मन से सुरत को ऊपर ले जाने के लिये पहले हठ योग का साधन किया जाता था। आजकल क्योंकि हठ योग का साधन कठिन ही नहीं बल्कि असंभव है। आजकल के संतों ने सुरत को मन से निकालने के लिए नाम की भक्ति या सुरत शब्द योग का तरीका निकाला है, जिसका जिकर हमने पूरी तरह से पुष्प नं० ४ में किया है। कृपया देखें।

(३) शान्ति :— शान्ति सुरत को प्राप्त होती है :—

सुरत क्या है ?

हजूर परम दयाल जी महाराज फरमाया करते हैं कि सुरत चेतन का एक बुलबुला है। जैसे पानी का बुलबुला पानी व हवा के मेल से बनता है, उसी तरह यह सुरत का बुलबुला अनामी पुरुष के अंश और चैतन्यता अथवा भान बोध जो कि सार शब्द में मौजूद रहता है, अनामी पुरुष के उस शब्द की ओर झुकने पर उसके एक अंश पर चेतनता का लेप चढ़ जाता है और इस तरह से सुरत क्या हुई ? अनामी पुरुष का अंश प्लस चेतनता। इस चेतनता के असर (प्रभाव) से उसमें खेल खेलने की शक्ति

आ जाती है। हजूर दाता दयाल जी ने इसलिए जो सुरत की व्याख्या की है, वह इस प्रकार है। सु यानी अच्छा और रत माने खेल (अच्छा खेल)। सुरत का खेल क्या है ? जन्मना व मरना। जबतक हम साधन द्वारा इस सुरत को निरत नहीं बना लेते, वह वापिस अनामी पुरुष में, जिसे शान्ति का भण्डार कहते हैं, नहीं दाखिल हो सकती। निरत को दाता दयाल ने फरमाया है कि : नि याने नहीं रत माने खेल।

कबीर साहिब ने फरमाया है :—

तन थिर, मन थिर, वचन थिर, सुरति निरति थिर होय।
कहत कबीर वा पलक को, कलप न पावें कोय॥

इसलिए सुरत से चेतनता या भान बोध को अलग करने के लिए संतों ने नाम की भक्ति या सुरत शब्द योग बताया है, जिसका जिकर इसी लेखमाला के पुष्प नं० ४ व ५ में पूरी तरह से किया गया है सो पढ़िये।

पुष्प नं० १९

चार प्रकार की मुक्ति व चार प्रकार की भक्ति

शास्त्रों में चार प्रकार की मुक्तियां बताई गई हैं :—

(१) सा-लोक मुक्ति (२) सामीप्य मुक्ति (३) सारूप मुक्ति (४) सायुज्य मुक्ति।

इनको ठीक समझने के लिये एक ऐसे पाथिक का उदाहरण देते हैं जो कार्तिकी के अवसर पर गंगा स्नान करने गया। बत्तीस मील तो बस में सफर किया और जिस अड्डे पर उतरा वहां से गंगाजी चार मील दूर थी और कोई खास रास्ता पहुचने का नहीं था। वह दो मील पैदल चला तो उसको गंगाजी का नीला रेत दिखाई दिया और खजूर, झाड़, झूंड़ जो गंगा के खादर में उग जाते है वे भी दिखाई दिये। यानि वह पाथिक गंगा के लोक में पहुंच गया। आगे बढ़ा, गंगा माई के दर्शन हुए यानि गंगा जी के समीप पहुंच गया। अब तीन बार गंगा जी में डुबकी लगाई। स्नान करके डुबकी लगाई। अब तीनों सूरतों में वह गंगाजी से अलग नहीं हुआ

बल्कि उसमें सम्मिलित ही रहा । स्नान करने के बाद उसने एक लोटा जल उठाया व गंगा जी को चढ़ाया । यानि पानो में पानी विलय हो गया । यानि जहां से पानी निकला था उसमें रल गया और ऐसा रला कि इन पानी के कणों को जो लोटे में से गिरे थे अब कोई ताकत इकट्ठा नहीं कर सकती । इसी तरह से हम भी एक पथिक हैं । उस लोक में पहुंचने पर सलोक कहलाये । समीप पहुचने पर सामीप्य कहलाये और डुबकी लगाने पर सारूप कहलाये और विलय होजाने पर सायुज्य मुक्ति कहलाती है । ये मुक्तियां भक्ति करने पर प्राप्त होती है, कोई भी जीव कैसी ही भक्ति करे सच्चे हृदय से वह फजूल नहीं जाती । जिस तरह चार मुक्तियां हैं, उसी प्रकार चार प्रकार की भक्तियां हैं ।

(१) शरीर से भक्ति करना अथवा आरती उतारना, भोग लगाना, पैर दबाना, पंखा झलना, तीर्थ ब्रत करना और कर्म काण्ड इसी में आते है ।

(२) मन से भक्ति :—जो अपने इष्ट का ध्यान करते है वह मन की भक्ति कहलाती हैं, चूंकि ध्यान मन से होता हैं ।

(३) तीसरो भक्ति आत्मा से होती है यानि आत्मा से आनन्द को अनुभव करना।

(४) चौथी भक्ति सुरत से होती है।

पहली भक्ति से ससार की वस्तुएं प्राप्त हो सकती हैं अथवा संसार का सुख मिल सकता है। या यूं कहिये कि संसार के दुखों से मुक्ति हो जाती है और इसलिए इसे सा-लोक मुक्ति कहा है।

मन से भक्ति :—यानि इष्ट का ध्यान करना। इससे मन के दुखों से मुक्ति मिल जाती है। अतः इसे सामीप्य मुक्ति कहा है। जो आत्मा से आनन्द अनुभव करते हैं उनको आनन्द मिलता है और आनन्द रचना की चीज है क्योंकि इसमें त्रिकुटी बसती है यानि आनन्द का लेना, आनन्द का लेने वाला और आनन्द। इसलिए ये तीनो भक्तियां जीव को जन्म मरण से बचा नहीं सकतीं। जो सायुज्य मुक्ति का सुख चाहते हैं उनको सुरत से भक्ति करनी पड़ेगी। सुरत से भक्ति कैसे होती है? अपने अन्तर में शब्द व प्रकाश को प्रगट करके शब्द को सुनना व प्रकाश को देखना। क्या ये शब्द हमारे अन्दर प्रकट हो सकते हैं? मैं

अपने अनुभव के आधार पर कहता हूं कि अवश्य हो सकते हैं ?

शब्द सब की खोपड़ी में गूंजता हरदम अजीज।
पर वे ही सुन पाते हैं जिनको. सुनने की होवे तमीज॥

यानि हर नर शरीर धारो के, चाहे वह विद्वान हो या अनपढ़, धनी हो या गरीब गृहस्थी हो या भेषधारी साधु हो किसी मजहब का या जाति का हो या किसी देश का रहने वाला। यह शब्द सबकी खोपड़ी में हर समय गूंजता रहता है। लेकिन इसको वे हो प्रगट कर सकते हैं जिनको इसको प्रकट करने की तरकीब या युक्ति का पता हो। इस शब्द के प्रगट करने व सुनने का नाम सुरत शब्द योग है। इसी को नाम की भक्ति भी कहते है। इसका विस्तार पूर्वक वर्णन हमने पुष्प नं ४ व ५ में दिया है। उसमें पढ़िये। लेकिन संत कहते हैं कि यह साधन या अभ्यास औजार है मंजिले मकसूद नहीं अथवा वह ठौर ठिकाना नहीं कि जहां से हम आये है वहां पहुचां दे। ठौर-ठिकाने तक पहुचने के लिए इस करनी अथवा साधन के साथ-साथ रहनी का बनाना भी परम आवश्यक है। संत कबीर के शब्दों में :—

ज्ञान समझना और है करनी रहनी और,
जाकी रहनी बन गई, लगे ठिकाने ठौर
करनी करे सो पूत हमारा, कथनी कथे सो नाती।
रहनी रहे सो गुरू हमारा, हम रहनी के साथी॥

अब सवाल होता है कि रहनी क्या है जिसके रहने से सायुज्य मुक्ति प्राप्त हो जाती है ? रहनी के माने यह है कि इन्सान अपनी जिन्दगी इस तरह गुजारे कि उसको तन का भी सुख मिले, मन का भी सुख मिले, आत्मानन्द भी मिले तथा सायुज्य मुक्ति भी प्राप्त हो, या यूं कहां जाये कि रहनी के ४ अंग हैं, या कहिये चार पाये हैं (खाट के)। अगर हाथी का एक पांव न हो तो लंगड़ा कहलाता है व ठीक तरह से चल नहीं सकता। पहला पाया है, शरीर का सुख। दूसरा पाया है मन का सुख, तीसरा पाया है आत्मानंद और चौथा पाया है मुक्ति या शान्ति। कथनी, करनी व रहनी का पूरा विवरण हमने पुष्प नं० ३ में दिया है। कृपया पढ़िये।

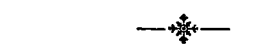

पुष्प नं० १७

संसार में पांच प्रकार के भक्त पाये जाते हैं :—

(१) मनमुख भक्त। (२) जिज्ञासु भक्त। (३) गुरुमुख भक्त। (४) साधु। (५) संत।

(१) मनमुख भक्त :— जो मन ही को मुख्य मानकर मन के सहारे चलते हैं वे मनमुख भक्त कहलाते हैं। संसार के इने गिने लोगों को छोड़ कर सभी लोग मनमुख भक्त होते हैं। कबीर साहिब की वाणी है कि :—

मन के मते न चालिये, मन के मते अनेक।
जो मन पर असवार है, बिरला साधु एक॥

साथ ही यह भी लिखा है :—

मन के मते न चालिये, मन के मते अनेक।
ले डूबे दरियाव में, जाय हाथ से छूट॥

(२) जिज्ञासु भक्त :— यानि मन के मते पर चलने वाले जब बार-बार संसार के चपेटे खाते हैं और जो काम हम नहीं करना चाहते उसको भी करने पर मन मजबूर कर देता हैं। वह नाना प्रकार के जाल में

फंसा देता है, जिसके कारण मन दुखी होता है तो हम मजबूर होते हैं सोचने के लिए आखिर यह मन है क्या बला और इस मन से केसे निपटें कि इसके जाल से छूट जायें। जब मन में ऐसी जिज्ञासा पैदा हो जाती है तब वह मनमुख भक्त नम्बर २ के भक्त यानि जिज्ञासु भक्त में तबदील हो जाते हैं।

(३) गुरुमुख भक्त :— जब वह जिज्ञासा उठते-उठते उसकी धारणा बन जाती है। पूर्ण रूप से रिद्धि-सिद्धि (डिमान्ड एण्ड सप्लाई) के सिद्धान्त के अनुसार कोई न कोई गुरु उस जिज्ञासा को पूरी करने के लिये मिल जाता है और अब वह भक्त गुरुमुख भक्त कहलाते हैं।

(४) साधु :— जब वह गुरुमुख भक्त गुरु के बताये हुए साधन पर अमल करता है तो वह साध या साधु कहलाता है।

(५) संत :— जो साधन करते-करते सिद्धि प्राप्त कर लेता है और मन से ऊपर उठकर मालिके कुल में जिसे ईश्वर, खुदा, परमात्मा, अनामी पुरुष या अकाल पुरुष कहते हैं उसमें लीन हो जाता है तो वह संत कहलाता है। क्योंकि संतों का अवतार

निबल, अबल व अज्ञानी जीवों के उद्धार के लिये होता है वह हमारे बीच में हमारी तरह गृहस्थ में रहकर गृहस्थ की जरूरत की चीजें उपार्जन करता है यानि अपनी रोटी आप कमाता है और हमारे जैसे ही कपड़े पहनता है और हमारे ही बीच में रहता है और खद तकलीफ उठाकर हम निबल, अबल अज्ञानी प्राणियों को सहारा देता है और सहारा देकर हमारा उद्धार करता है। संत की तारीफ में कहा गया है।

उधर है लीन मालिक में, इधर हम तुम में रहता हो।
हमारी पीर हरने को, हजारों पीर सहता हो॥

यह संत हैं। इसके अलावा खासकर भारतवर्ष में और अधिकतर हिन्दु जाति में भेषधारी या बनावटी भक्त भी बहुत बड़ी तादाद में पाये जाते हैं। वे साधुओं का भेष बना अथवा गेरुआ कपड़े पहन या विभूती रमा अथवा जटां रखवा वा मुंड मुंडवा कर यत्र तत्र विचरते हुए या तीर्थों में, आश्रमों में व गद्दियों के सहारे रहते हैं तथा अपने वस्त्र व भोजन के लिये गृहस्थ लोगों की कमाई पर आधारित रहते हैं या तरह-तरह के प्रपंच व जाल रच कर गृहस्थियों

को लूटते रहते हैं। ऐसे भक्त खुद भी धोखा खाते रहते हैं और दूसरों को धोखा देते रहते हैं। संतों की वाणी हैं कि :—

मोहताज जो गैरों का है हरगिज नहीं इन्सान वो।
वो तो हैवानों से बदतर कायर और नादान हैं॥

जो लोग दूसरों के कमाये हुए अन्न को खाते हैं उनका अन्नमय कोष दूषित हो जाता है और कहावत है :—

जैसा खाओ अन्न वैसा होवे मन।

तो ऐसे लोगों का अन्नमय कोष और मनोमय कोष दूषित हो जाने पर वे विज्ञानमय कोष या आनन्दमय कोष व उसके आगे शान्ति पेटी में हरगिज नहीं पहुंच सकते। इन कोषों की पूरी-पूरी व्याख्या पुष्प नं० ७ में की गई है। उसे पढ़िये। अब ऐसे बनावटी भक्तों की जो दूसरों के कमाए हुए अन्न व धन पर निर्भर रहते हैं, क्या दशा होती होगी ? इसको भगवान जाने। पर एक बात देखकर हमें भय लगता है कि हम रावण के पुतले को शहर-शहर और गांव-गांव में जला कर रावण, जो चार वेदों का ज्ञाता था, की हर साल मिट्टी पलीत करते

हैं। सवाल उठता है कि उसने ऐसा क्या भारी अपराध किया था जिसके कारण उसकी यह गति बनाई जाती है ? जब रावण की बहिन सूर्पनखा की नाक लक्षमण ने काट दी और वह अपनी नाक को लेकर दरबार में पहुंची तो एक रावण जैसे राजा को भार क्रोध आ जाना स्वभाविक था और उसने उसी वक्त अपने मन में ठान ली कि मैं रामचन्द्र से बदला अवश्य लूंगा और वह साधु का वेश बनाकर जबकि सीता अकेली थी उठाकर ले आया। लेकिन उसने सीता के साथ लक्षमण की तरह कोई बलात्कार नहीं किया। उसको कुटनीयां द्वारा बहकाया गया और नाना प्रकार के लोभ व डर दिये। पर उसके अंग को जबरदस्ती हाथ नहीं लगाया। जबकि लक्षमण ने सूर्पनखा को अंगहीन करके रावण को भड़काने वाला काम किया था। अगर धर्म नीति के साथ देखा जाय तो लक्षमण इस मामले में अधिक दोषी पाया जाता है, पर असका पुतला नहीं जलाया जाता। फिर रावण के पुतले को क्यों जलाया जाता है ? सिर्फ इसलिये कि वह बनावटी साधू बनकर छल कपट व नाना प्रकार के प्रपंच रच के गृहस्थियो से उनका बीसों नाखुनों से कमाया हुआ

अन्न, धन व माल उन्हे बहका कर व उनके साथ छल कपट कर हड़पते हैं, तुम्हीं अपना फैसला अपने आप दो कि रावण की तो वह दशा हुई तुम्हारी क्या होनी चाहिए ?

पुष्प नं० १८

तीन प्रकार के ज्ञान

(१) भौतिक पदार्थों का ज्ञान। (२) अध्यात्मिक ज्ञान। (३) सत ज्ञान।

(१) भौतिक पदार्थों का ज्ञान :—संसार के पदार्थों का ज्ञान भौतिक ज्ञान कहलाता है। जिसको जितना भौतिक ज्ञान अधिक होता है उतना ही सांसारिक दृष्टि से वह योग्य पुरुष माना जाता है। जितनी भी स्कूलों में, विद्यालयों में व विश्व-विद्यालयों में शिक्षा दी जाती है वह सब भौतिक ज्ञान के अन्तर्गत आती है।

(२) अध्यात्मिक ज्ञान :—यह है कि मैं, यह और वह क्या है ? 'मैं' से क्या मतलब है ? 'मैं' से मतलब है सुरत या जीव जो कि हमारे अन्दर रहती है। मैं, मैं कहती रहती है और संसार में बिचरती हुई

दुःख सुख उठाती रहती है। हमारा शरीर 'मैं' नहीं है। यदि शरीर 'मैं' होता तो मरते वक्त 'मैं' के साथ इसको भी चल देना चाहिये। 'मैं' वास्तव में मालिके कुल की अंश है।

'यह' से क्या मतलब है? 'यह' से मतलब है कि यह संसार या माया जो हमारे चारों तरफ बसी हुई है और जिसमें हमारी 'मैं' विचरकर या संघर्ष कर अपने शरीर के पोषण का सामान इक्ट्ठा करती है जो संसार में जगह-जगह बिखरा हुआ है और इस तरह दुःख सुख उठाती हुई माया में ही फंसी हुई रहती है और बार-बार जन्म मरण के चक्कर में फंसी हुई बार-बार आती जाती रहती है और इस तरह अपने मालिके कुल से अलग-अलग रहती है और जब तक मालिके कुल से नहीं मिल जाती या नहीं रल जाती यह जन्म मरण का चक्कर लगा ही रहता है।

"वह" 'वह' से क्या मतलब है? 'वह' मालिके कुल हैं जो हमारी 'मैं' और इस माया का आधार हैं। जिसे कोई ईश्वर परमात्मा खुदा अनामी पुरुष और अकाल पुरुष कहता है। यह अध्यात्मिक ज्ञान धार्मिक पुस्तकों में भरा पड़ा है।

(३) सत ज्ञान :— सत ज्ञान वह ज्ञान है जो हमें बताता है कि हमारी माया में फंसी हुई 'मैं' इस माया से निकल कर अपने आधार मालिके कुल या परमात्मा या अनामी पुरुष में रल जावे और जन्म मरण से रहित हो जाय। यह सत ज्ञान किसी संत गुरु से ही मिल सकता है जिसने कि उस साधन पर अमल किया हो, जिसको साध कर उसकी खुद की 'मैं' माया को छोड़कर मालिके कुल में रल गई हो। नाम की भक्ति या सुरत शब्द योग, जिसकी व्याख्या पूरी तरह पुष्प नं० ४ व५ में की गयो हैं, कृपा करके पढ़ें।

सत गुरु माने सच्चे ज्ञान के। सत गुरु या ज्ञान कभी मरता नहीं। हां, चोले बदलता रहता हैं। अगर मर गया होता तो आज उसका जिक्र क्यों होता और हमारे समय में जिस चोले में यह सत ज्ञान होता है उस चोले को ही हम सतगुरु कहते हैं और उससे ही हमारी 'मैं' ज्ञान पाप्त करती है कि हमारी 'मैं' क्या साधन करे कि जन्म मरण से रहित हो जाय और जिससे यह ज्ञान मिलता है उसी को हम अपना इष्ट बनाते हैं व उसी की हम भक्ति, सेवा,

पूजा इत्यादि करते हैं। अब एक सवाल हो सकता है कि सतगुरु के चोले की पूजा भक्ति करना क्या मानस पूजा नहीं कहलाती है ?

उत्तर है नहीं।

शागिरे जरी हो या मिट्टी का हो एक ठिकरा।
किमत उसी को देते है जो उसके अन्दर हो भरा॥

यानि चाहे सोने की सुराही हो या मिट्टी की सुराही हो कीमत उसी की दी जायगी जो कि उसके अन्दर भरा हुआ हो। मान लिजिये सोने की सुराही में जल भरा हुआ है और मिट्टी की सुराही में में अमृत। इनमें से कौन सी ज्यादा कीमती समझी जाय ? मिसाल के लिये एक और उदाहरण देते है। जब हम बोमार हो जाते है हम डाक्टर को बुलाते और उसकी फीस दस रुपये होती हो तो दस रुपये देते हैं। मालिक न करे डाक्टर कल को पागल हो जाता है तो क्या कोई कल उसको दस रुपये फीस देगा ? जवाब मिलेगा नहीं। जो कल आपने फीस दस रुपये दी थी यानि उस डाक्टर की दस रुपये से पूजा की थी और उसके हाथों में ही दस रुपये दिये थे वह डाक्टर के जिस्म के नहीं दिये थे बल्कि उसके

ज्ञान के जो कि उसमें कल मौजूद था। इसी तरह सत गुरु के चोले की पूजा की जाती है जो कि उसके अन्दर भरा पड़ा रहता है। इसलिए सतगुरु के चोले की पूजा हरगिज नहीं कही जा सकती।

गुरु को मानुष जानते ते नर कहिये अन्ध।
दुखीहोय संसार में आगे जम के फन्द॥

लेकिन ऊपर बताये हुए तीनो ज्ञानों में से कोई भी ज्ञान चाहे वह भौतिक पदार्थ का ज्ञान हो या आध्यात्मिक ज्ञान हो या सत ज्ञान हो, बिना गुरु के प्राप्त नहीं हो सकता। कबीर साहब कहते हैं कि :—

गुरु बिन ज्ञान न उपजे गुरु बिन मिले न भेद।
गुरु बिन संसय न मिटे जय जय जय गुरु देव॥

आगे कहते हैं :—

पुस्तक पढ़ना और है, ज्ञान समझना और।

सवाल पैदा होता है कि क्या पुस्तकों से ज्ञान प्राप्त नहीं हो सकता ? अगर पुस्तकों से ज्ञान प्राप्त हो जाया करता तो हमारे बच्चों के पास मौलिक ज्ञान अथवा विज्ञान की, इतिहास की, भुगोल की, गणित की अथवा कई और विषयों की किताबें कन्धों पर लदी हुई होती हैं। फिर भी हम मजबूर होते हैं

कि हजारों रुपये साल के खर्च करके उनको स्कूलों में, कालेजों में और विश्व विद्यालयों में भेजते हैं। इसलिए कि बिना मास्टर या गुरु के वह भौतिक ज्ञान भी पुस्तकों से प्राप्त नहीं होता। जब भौतिक ज्ञान ही बिना गुरु के प्राप्त नहीं हो सकता तो अध्यात्मिक ज्ञान व सत ज्ञान बिना गुरु के कैसे प्राप्त हो सकता है ? इसलिए कबीर साहिब की लिखी हुई वाणी की पुस्तक पढ़ना और है ज्ञान समझना और। ऐसा सिद्ध होता है।

पुष्प नं० १९

यह है नकल खत जो मीरा बहन को २५–२–१९७५ को भेजा गया। नाम की भक्ति या सुरत शब्द योग का साधन

साधन में सहज व शीघ्र सफलता लाने के लिये नीचे लिखी हुई नौ बातों का सहारा लेना पड़ता है।

तीन आधार :—(१) सतगुरु। (२) सतसंग। (३) सतनाम।

यह तो आपने तोनों धारण किये हुए हैं।

तीन अभ्यास :—(१) सुमिरण। (२) ध्यान। (३) भजन।

इसमें से वह अभ्यास यानि सुमिरन व ध्यान आपका पक चुका है। भजन यानि शब्द का सुनना व प्रकाश का देखना। शब्द आपके खुले हुए हैं और प्रकाश को अभी आप परवाह न करो। आगे आकर प्रकाश खुद ही खुल जाता है। इस वक्त आपकी पूरी रुचि व लग्न, शब्द के सुनने में ही लगनी चाहिए ताकि आगे के शब्द खुद ब खुद खुल जाये। आपने लिखा है कि घन्टा गर्जन दोनो सुनाई देते है। आप गर्जन की तरफ ज्यादा तवज्जा लगाया करो। घन्टा अपने आप बन्द हो जाएगा और जितनी अधिक रुचि व लय लगाओगे उतनी ही जल्दी सारंगी का शब्द खुल जायगा। रुचि व तवज्जा से किये हुए थोड़ा साधन एक घन्टे के साधन से भी ज्यादा माने रखता है। साधन बिना नागा टाइम व नियम से करना चाहिए। अगर एक घन्टा साधन करना हो तो उसको ३० मिनट

सुबह व ३० मिनट शाम को करना चाहिए और इतनी देर करना चाहिए कि शरीर, मन व सुरत उकता न जाये। उकता जाने पर फिर साधन में रुचि कम हो जाती है। यानि तब तक साधन करो, जब तक कि रुचि बनी रहे। साधन करना भी जीवन मरण के खेल का एक अंग है।

बन्दे खेल तू ऐसा खेल, तीन तार तेरी बीना के हो न जाये बेमेल।

वीणा के तीनों तारों को एक साथ कसा जाता है। एक भी तार ढीला हो जाने पर वीणा कनसुरी हो जाती है और अरुचि पैदा हो जाती है। तीन तार क्या हैं ? उनको भी पहचानों।

पहला तार लगा इस तन का, दूजा मन का मेल।
तीजा तार सुरत का लागा, कर रहा सारे खेल।
बन्दे खेल तू एसा०
तीन तार तेरी वीणा के, हो न जाये बेमेल॥

यानि साधन इतनी देर व इस तरह से करो कि न शरीर को अरुचि पैदा हो और न मन को और न सुरत को।

तीन परहेज यहहैं :—

(१) अपने अभ्यास के बारे में सिवाय आचार्य

व गुरु के तुम्हारी मदद और कोई नहीं कर सकता है। दूसरों से ज़िकर करने पर साधन खत्म हो जाता है।

(२) जो साधन हो चुका है उस पर बहुत खुशी न मनाओ, नहीं तो अहंकार पैदा होकर साधन में रुकावट पैदा होती है। जबकि तुमको आगे अभी बहुत साधन करना है।

लाख करम लागे रहे, एक क्रोध की लार।
किया कराया सब गया, जब आया अहंकार॥

(३) अगर किसी अभ्यासी ने नामदान तुमसे पीछे लिया हुआ है और अपनी करनी के मुताबिक तुमसे आगे निकल गया है तो उससे द्वेष न करो। अगर द्वेष करोगे तो उसका तो कुछ नहीं बिगड़ेगा, तुम गिर जाओगे। अगर कभी अभ्यास में रुकावट व गिरावट आये तो घबराना नहीं चाहिये। बच्चा बार-बार गिरता है उठता है और फिर उठता है। तभी तो उसके पैर मजबूत होते हैं।

चलते-चलते जो गिरे, ताही न लागे दोंष।
जो घर से ही ना चले, उसको लम्बे कोस॥
गिरते हैं शह-सवार ही, मैदाने जंग में।
वो तिफ्ल क्या गिरे जो घुटनों के बल चलें॥

सुबह का भूला शाम तक घर आ जाय तो उसको भूला हुआ नहीं माना जाता। यहां तक हुई नौ बातों का सहारा लेना है। आगे उन बातों का ज़िक्र किया जायेगा जो अभ्यास में गिरने से बचाती हैं और अभ्यास को तरक्की देती हैं।

(१) एक समय में एक ही साधन करना चाहिए क्योंकि सुरत एक समय में दो जगह नहीं रह सकती। इसलिए सुमिरन, ध्यान व भजन तीनों एक साथ अकेली सुरत नहीं कर सकती। पहले कुछ देर साधन करो सुमिरन का, फिर कुछ देर साधन करो ध्यान का, फिर साधन करो शब्द का और जब प्रकाश खुल जाये तो शब्द को छोड़कर प्रकाश देखो।

(२) सिवाय सोने के वक्त को छोड़ कर साधक को हमेशा अपने तन व मन को नीचे लिखे कामो में लगाये रहना चाहिए और दिनचर्या बना लेना चाहिये और जो समय जिस काम के लिये निर्धारित किया है वह काम उसी नियत समय पर करना चाहिये।

काम नं० १ :—शरीर की जरूरियात से फारिग होना ।

काम नं० २ :—शरीर को जिन्दा रखने व उसकी रक्षा करने के लिए सामान जुटाना ।

काम नं० ३ :—भोजन इत्यादि बनाना व खाना ।

काम नं० ४ :—स्वाध्यायः लिखना, पढ़ना व पत्र व्यवहार ।

काम नं० ५ :—आनन्द व खुशी लेना ।

काम नं० ६ :—साधन करना :—जो समय फिर भी खाली रह जाये तो उस खाली वक्त में मन को खुशी व आनन्द में लगाये रहना चाहिए । खुशी व आनन्द लेने का यह तरीका है कि गुरु का ध्यान करके त्रिकुटि में उसका रूप बन जाने पर यह ख्याल बनाओ कि गुरु साक्षात आकर बैठ गया है और उसका अपने अंतर में दर्शन करते हुए उसके व्यवहार को, बातें करने को, उसके रहन सहन को याद करके खुश होते रहो । तुम तो अभी अभ्यासी हो । गुरु लोग भी खाली समय में अपने अत्यन्त प्रिय इष्ट का

ध्यान कर अपने अन्दर उसके गुणों की योग्यता को, व्यवहार को व उसके साधन को याद कर के खुशी आनन्द लेते रहते है। इस तरह खुशी व आन्नद मैं खुद भी लेता रहता हूं। इससे यह फायदा होता है कि मन को फिजूल बातें सोचने का मौका नहीं मिलता व इस तरह खुशी और आनन्द लेने का असर दिन रात बना रहता है, जैसे कि हमको कोई खुशी का तार मिलता है तो उसकी खुशी कई दिन तक रहती है। याद रखो, जो खुशी व आनन्द का स्मरण करते है, उनको खुशी व आनन्द मिलता है। मगर जो चिन्ता दुःख, निर्धनता, बीमारी का सुमिरन करता है उसको यह सुमिरन की हुई चीजें मिलती हैं। इसलिए अपने विचारों को हमेशा अच्छी बातों में लगाये रक्खो। हमेशा अपने लिए व दूसरों के लिए शुभ संकल्प व विचार हृदय में रखना चाहिये। सहनशीलता से काम लेना चाहिए और लोभ लालच से बचकर दूसरों के कमाये हुए धन या अन्न से जहां तक हो बचना चाहिऐ। तुमको जो गुजारे के लिये मिलता है वह तो तुम्हारा स्वयंसिद्ध अधिकार है। उसको पराया धन नहीं कहा जा सकता, हां, जो

धन दक्षिणा के रूप में मिले उसको अपने अंग न लगाकर प्रचार के काम में खर्च करते रहो, या किसी दुखिया को सहारा देने में भी लगा सकते हो। बाहर सत्संग कराये जाने पर सफर खर्च जिसमें खाना भी शामिल है, उसका ग्रहण करना भी तुम्हारा स्वयंसिद्ध अधिकार है। इसके इलावा जब तुम यहां थी, बहुत सी बातों पर तुमसे अमल कराया गया था, उनको भी ध्यान में रखकर अमल करती रहो और इस कागज को जिसमें ऊपर लिखी हुई बातें दी है अक्सर पढ़ती रहो या कम से कम दस दिन तक दिन में एक बार जरूर पढ़ लिया करो। ताकि ये बातें तुम्हारे दिमाग में बैठ जाये। यह जो कुछ भी लिखा है, मैंने अब तक के स्वयं के किये हुए अनुभवों के आधार पर लिखा है और जो अनुभव होता रहेगा, लिखता रहूंगा।

प्रचार करते समय या सतसंग या नाम, सेवा भाव से करो। किंचित भी अहंकार आने न पावे और प्रचार में व सतसंग में जहां तक हो अपने अनुभव के अनुसार ही बातें करो और सुमिरन व

ध्यान पर पूरा जोर देती रहो। जो फोटो तुम ले गई हो, उसकी कीमत जो आये वह प्रचार के फण्ड में जमा करके खर्च करती रहो और किताबें, जो लेगई हो, वह अधिकारियों को जो रुचि से पढ़ें, मुफ्त दे सकती हो। समाधि के प्रसाद के पैसे जो तुम यहां से ले गई हो, उसमें चारों गुण हैं अर्थात् (१) धन की वृद्धि। (२) तंदुरुस्ती। (३) भक्ति। (४) विद्या। प्रसाद सिर्फ उनको दो जो महाराज जी पर विश्वास रखते हों और कम से कम महाराज जी के फोटो के आगे बैठकर और उनका ध्यान कर, दस मिनट तक वही चीज मांगते रहे, जिसके लिये उन्हों ने पैसा बान्धा है। विश्वास यह करना है कि यह सतपुरुष पूर्णतया समर्थ है। मुझे तो भाई, इनके ध्यान करने से वह सब कुछ मिला जो एक गृहस्थी को सुख के साधन के लिये मिलना चाहिये और सबसे उत्तम चीज जो मिली है वह है आजकल के जमाने में अच्छी औलाद का मिलना। जिनको खुद तुम यहां रह कर देख गई हो। जो लिखे हुए सतसंग यहां से ले गई हो उनको पढ़ती

रहो व सुनाती रहो। इनसे तुमको काफी प्रचार व सतसंग करने में लाभ मिलेगा।

शुभचिन्तक,
कृषक।

पुष्प नं० २०

क्या गुरु धारण करना जरूरी है ?

उत्तर :—हां, इसका सही जवाब समझने के लिए हमको जरूरी है कि हम हमारे शरीर की बनावट को तथा उसके अन्दर क्या चीज भरी हुई है यह जान लें। डाक्टरी के लिहाज से हमारा शरीर हाड, मांस व चर्म से बना हुआ नजर आता है। लेकिन आध्यात्मिक ज्ञान व सत ज्ञान के ज्ञाताओं ने बताया है कि इस स्थूल शरीर के अन्दर एक सूक्ष्म शरीर और है जिसे शास्त्रों ने अतःकरण कहा है और चूंकि अंतःकरण में मन की विशेषता होती है। इस सूक्ष्म शरीर को संतों ने मन की संज्ञा दी है।

सूक्ष्म शरीर के इलावा एक कारण शरीर जिसे

आत्मा कहते हैं और इस शरीर में मौजूद है और इस कारण शरीर का भी महाकारण शरीर हमारा जीव है, जिसे सन्तों ने सुरत कहा है। यह चारों शरीर कोई न कोई खुराक खाते हैं। अच्छी खुराक खाते हैं स्वस्थ रहते हैं, बुरी खुराक खाते हैं बीमार हो जाते हैं। आगे दी हुई तालिका में यह वर्णन किया है कि कौन शरीर कौन गिजा खाता है और खराब गिजा खाने या बिल्कुल गिजा न खाने से शरीर बीमार हो जाता है और वह क्या बीमारी लग जाती है और वह बीमारी किस दवा से दूर हो सकती है और वह दवा कहां से व किससे मिल सकती है।

तालिका जिसका जिक्र पीछे किया गया है :—

	स्थूल शरीर अथवा तन	सूक्षम शरीर अथवा मन	कारण शरीर अथवा आत्मा	महा कारण शरीर अथवा सुरत या जीव
	१	२	३	४
नाम खुराक जो प्रत्येक शरीर खाता है	धूल में पैदा होने वाली वस्तुएं	ख्याल या विचार	प्रकाश यानि आनन्द	शान्ति अथवा निरर्द्वद्वता

खुराक नहीं मिलने से या खराब खुराक मिलने से कौन २ से रोग हो जाते हैं	सड़ा गला भोजन यानि दूषित अन्न खाने से स्थूल शरीर को तरह २ के रोग लग जाते हैं।	बुरे ख्याल मन में विचारने पर चिन्ताएं दुविधाएं व द्वन्द्व लग जाते हैं।	नींद न लेना, न अन्दर के प्रकाश को देखना, प्रकाश न देखने से क्लेश लग जाता है।	सार शब्द जो अन्तर में होता है उसके नहीं होने से द्वन्द्व अथवा जन्म मरण का होना।
इलाज	डा० या हकीम की सलाह से दवाओं का प्रयोग करना तथा परहेज करना।	वक्त गुरु, जो मन के स्वरूप को समझता हो और अपने मन को निरोग बना लिया हो, से ज्ञान प्राप्त करना।	ऐसे गुरु से जो आत्मा के स्वरूप को समझता हो व अन्तर के प्रकाश को देखकर आनन्द लेता हो उससे ज्ञान प्राप्त करना व अपने अन्तर में प्रकाश को प्रकट करना व देखना।	ऐसे वक्त गुरु से जो सुरत के स्वरूप को समझता हो और सार शब्द को सुनते २ अशब्द गति का अनुभव करके जीवन मुक्त अवस्था में रहता हो से ज्ञान प्राप्त करना।

ऊपर की तालिका से यह पता लग जायेगा कि अगर किसी मनुष्य के शरीर में रोग होता है तो उसका इलाज करने वाले तो बहुत से डाक्टर व हकीम मिल जावेगें। लेकिन सूक्ष्म शरीर की बीमारी या कारण शरीर की बीमारी या महा कारण शरीर की बीमारी का इलाज करने वाला हकीम शायद ही कोई मिले। क्योंकि इन तीनों शरीरों का इलाज ज्ञान से होता है और ज्ञान का मतलब गुरु से है। अगर किसी को अपने रोगी मन, रोगी आत्मा या रोगी जीव का इलाज ज्ञान की औषधी लेकर कराना है तो उनको गुरु या सतगुरु अवश्य धारण करना पड़ेगा। अन्यथा मन, आत्मा या जीव का उन रोगों से उद्धार नहीं हो सकता और जो लोग, मन आत्मा व जीव का इलाज नहीं कराना चाहते, उनको गुरु करने की अवश्यकता ही क्या ? और न ऐसे प्राणियों को गुरु धारण करने की आवश्यकता है जो न तो मन के रोगी हों और न जीव के रोगी हों।

पर ऐसा सतगुरु जो सत् ज्ञान देकर हमारे मन, आत्मा व सुरत का उद्धार कर सके मिलना सम्भव नहीं तो दुष्कर जरूर है। हम बहुत से ऐसे आदमियों

को जानते हैं कि जो ऐसे गुरुओं की तलाश में मुद्दत से भटक रहे हैं और मैं खुद भी काफी दिनों तक ऐसे गुरु की तलाश में भटकता रहा और मेरे कोई पिछले जन्मों के अच्छे कर्म थे कि मुझे ऐसे गुरु श्री हजूर परम दयाल जी महाराज के रूप में मिल ही गये। मैं सतगुरु की तलाश में कबीर पन्थी व नानक पन्थी लोगों के बहुत से मठों, गुरुद्वारों, आश्रमों कुटियों में गया और वहां के महन्तों और गुरुओं से मिला तथा राधास्वामी मत की भी दस गद्दियों में गया। राम द्वारे तथा नाथ द्वारे में गया तो सब जगह धन बटोरने का ही सौदा नजर आया। किसी ने कोई ढोंग रचा रखा, किसी ने कोई भेस बना रखा, किसी ने वेतन देकर प्रचारक अपने झूठे प्रोपेगंडे पर लगा रखे। परन्तु नहीं पाया कोई ऐसा गुरु जो मुझे, मेरे अशान्त मन को शान्त करने का तरीका बता सके। ऐसे भेसधारी व मठधारी गुरुओं की हिन्दुस्थान में कमी नहीं। साथ ही लोग भी सचाई सुनने को तैयार नहीं।

नाचे कूदे तोड़े तान, उसका परजा राखे मान।
सांची बात कबीरा कहे, सबके मन से उतरा रहे॥

साथ ही आज गुरु व चेले में जो व्यवहार हो रहा है वह भी सच्चाई लिए हुए नहीं। इसलिए सच्चे सत-गुरुओं का मिलना, जिनको कोई रोग न लगा हो अथवा वीतराग पुरुष हो, अत्यन्त दुष्कर हो चला है।

गुरु चोला व्यवहार जगत में झूठा बरत रहा। १ ।
कासे कहूं खोज नहीं काहूं, धोखे धार बहा। २ ॥
गुरु तो लोभ प्रतिष्ठा चाहत, शिष्य स्वारथ संग आन बंधा। ३ ।
सच्चा मारग सुरत शब्द का, सो अब गुप्त भया। ४ ।
गुरु चेला पाखंडी कपटी, चौरासी के दौर गया। ५ ।
शब्द सरूपी शब्द अभ्यासी, अस गुरु मिले तो पार हुआ। ६ ।
सुरतवन्त अनुरागी सच्चा, ऐसा चेला नाम कहा। ७ ।
गुरु भी दुर्लभ चेला दुर्लभ, कहीं मौज से मेल मिला। ८ ।
शब्द सुरत बिन जो गुरु होई, ताको छोड़ो पाप कटा। ९ ।
राधास्वामी यों कह गाई, बूझ वचन तब काज सरा। १० ।

साथ ही मैं अपने निजी तजरुबे के आधार पर यह भी कहूंगा कि जो सतगुरु बनाया जाय, वह ऐसा पूर्ण पुरुष हो जिसने सुरत शब्द योग का पूरा अभ्यास गृहस्थ में ही रह कर किया हो और अभी भी गृहस्थ में रह रहा हो। मैं ऐसा क्यों कहता हूं ? क्योंकि मैं एक ऐसे सन्यासी का चेला बन गया था

जो सुरत शब्द योग तो करते थे परन्तु पूर्ण नहीं थे। उनके साथ मुझे काफी पैसा खर्च करना पड़ा और जब दो तीन सोपानों के शब्द सुन चुका तो उन्होंने कहा कि अब आगे शब्द सुनना है तो अब संन्यासी हो जावो। मैंने कहा मेरे ऊपर तो अभी गृहस्थ की बहुत बड़ी ज़िम्मेदारियां हैं। दो कुंवारे लड़के व दो कुंवारी लड़कीयां अभी विद्या अध्ययन कर रहे हैं तथा उनकी शादियां करनी हैं। अगर आप उन सब की ज़िम्मेदारी अपने ऊपर लेवें तो सम्भव है मैं व मेरी धर्मपत्नी जो खुद भी सुरत शब्द का अभ्यास करती है हम दोनों ही संन्यास धारण करलें। वह ज़िम्मेदारी लेने को तैयार नहीं हुए और हमारा उनका सम्बन्ध विच्छेद हो गया।

यद्यपि मैं उनका आभारी अब भी हूं क्योंकि वे न मिलते तो शायद आज मैं मौजूदा गुरु की शरण में न जा सकता था। साथ ही मैंने उनसे यह भी कहा कि अगर कोई भक्ति या साधन ऐसा है कि जिसको कोई खास समुदाय या खास जाति के लोग, या खास देश के ही लोग कर सकते हैं तो उसे मैं खुदादाद या कुदरती साधन नहीं कह सकता।

क्योंकि जो चीज कुदरत ने बनाई है उस पर तो सब का एक सा अधिकार होना चाहिए।

कुदरती सब वस्तुओं पर सब ही का अधिकार है।
धूपो हवा है कुदरती, सब को मिले एक सार है॥

अगर यह सुरत शब्द योग केवल मुट्ठी भर संन्यासियों के लिए है और संसार में ९९ फी सदी से ज्यादा गृहस्थियों के काम का नहीं तो उसको कुदरती भक्ति नहीं कहा जा सकता और न उससे कुदरत के बनाने वाले पुरुष के पास पहुंचा जा सकता है। इसलिए मेरी सलाह तो यह है कि जिन गृहस्थी भाईयों को सुरत शब्द योग की साधना करनी हो उनको गृहस्थ में रहने वाले ही संत सत-गुरु को जो उस वक्त मौजूद हो सतगुरु धारण करना चाहिए। साथ ही मैं अपने निजी तज़रुबे के आधार पर यह भी कहूंगा कि महिला सत-संगियों को जो इस सुरत शब्द का अभ्यास करना चाहती हैं उनकी गुरु महिला ही होनी चाहिए और वह महिला होनी चाहिए जिसने गृहस्थ में ही रह कर सुरत शब्द योग को सिद्ध कर लिया हो। यद्यपि इस समय ऐसी महिलाओं का अभाव है जो सतगुरु बन

सकें। परन्तु अब संत लोगों की यह धारणा बन गई है। क्योंकि यह प्रेम का मार्ग है, इसलिए कुछ महिलाओं को गुरु बनाने का यत्न किया जा रहा है और कुछ महिलाएं इस भावना को लेकर अभ्यास में लगी हुई हैं। आशा की जाती है कि वे जल्दी इतनी योग्य बन जावेगी कि वे महिलाओं के लिए सत्गुरु का काम कर सकेंगी।

पुष्प नं० २१

न सुख ही मिला न कोई सुखी

हम सब जो भी कोई काम करते हैं वह सुख मिलने की लालसा से करते हैं लेकिन नतीजा क्या होता है :—

सुख की अभिलाषी दुनिया में, न ही सुख मिला न कोई सुखी।
कोई अन्न का दुःखी कोई धन का दुःखी, कोई तन का दुःखी, कोई मन का दुःखी॥

पुष्प नं० २२

मन की चंचलता हरना, अथवा मन को जीतना या बस में करना ।

दुनियां में रहने वाले कुछ इने गिने महापुरुषों को छोड़ सभी नर शरीर धारी प्राणीयों को चाहे वह अमीर हो या गरीब, विद्वान हो या मूर्ख, चाहे किसी भी मजहब को मानने वाले हों या चाहे किसी भी देश के रहने वाले हों, जाने या अनजाने, कम या ज्यादा यह सवाल कि :—(मन चंचल कहा न माने रे, मैं कौन उपाय करूं) सब के मन में हर समय बसा हुआ रहता हैं :—

मनुवा बस में करन को केवल एक उपाय।
अति सुन्दर और अति सुगम, सन्तन दियो बताय॥

मन को बस में करने के लिए परम आवश्यक है कि हम उसके स्वाभाविक गुणों को जानें—मन की चंचलता को देखते हुए कि क्षण में कलकत्ता पहुंच जाता है तो दूसरे क्षण में बम्बई, और कभी घर में कभी जंगल में, कभी मार-धाड़ में, कभी विषयों

में कभी नाना प्रकार की आशाओं व इच्छाओं में व नाना प्रकार के दूषित व अच्छे विचारों में दौड़ता रहता है।

इससे तो यह जान पड़ता है कि मन एक बल शाली वस्तु है लेकिन वास्तव में मन एक जड़ पदार्थ है। हमारे धार्मिक ग्रन्थ उस पदार्थ को जड़ कहते हैं जिसमें अपनी सत्ता (शक्ति) न हो या अपने आप को हरकत या (जहुल २) में न ला सके। ऐसा ही जड़ पदार्थ हमारा मन भी है क्योंकि जब तक मन में सुरत की धार अथवा चेतन शक्ति नहीं आ जाती तब तक मन हरकत में नहीं आ सकता। ठीक ऐसे ही जैसे कि :—

पर सत्ता आए बिना मनवा करे न काम।
ज्यों बिजली आए बिना बल्ब रहे बे काम॥

बिजली का करन्ट आए बगैर घरों में लगे हुए पंखे, बल्ब व कारखानों में लगी हुई बिजली की मशीनें काम कर नहीं सकतीं। सुरत क्या है ? इसका ज़िक्र शास्त्रों में नहीं किया गया है। सुरत चेतन का बुलबुला है और इस बुलबुले से जब तक चेतनता की धार मन में नहीं आ जाती, मन हरकत नहीं

कर सकता। सरत के बारे में हमने पुष्प नं० १ में काफी लिखा है, उसे पढ़िये। फिर भी यहां हम इतना लिखना जरूरी समझते हैं कि मन को बेकार करने के लिए यानि क्रियाहीन करने के दो तरीके हैं। एक आसान दूसरा अत्यन्त कठिन। ठीक ऐसे ही जैसे कि एक २० होर्स पावर की चलती हुई मोटर को क्रियाहीन बनाने के लिए दो तरीके इखत्यार किए जा सकते हैं। एक सहज और दूसरा अत्यन्त कठिन। इस चलती हुई मोटर को क्रियाहीन करने के लिए कठिन तरीका तो यह है कि उस मोटर के सामने ३० या ४० होर्स पावर का ब्रेक लगावें तो मोटर क्रियाहीन हो सकती है परन्तु इसके लिए बहुत खर्च करना पड़ेगा। साथ ही खतरा भी है कि कहीं ब्रेक या मोटर ही न टूट जाय और टूट कर आसपास के लोगों को घायल न करदे। दूसरा सहज तरीका यह है कि स्विच ऑफ करके बिजली के करन्ट को आने से रोक दिया जाय। अब एक सवाल हो सकता है कि क्या मन में भी कोई बिजली जैसा करन्ट आता है और तब वह क्रिया करता है। इसका जवाब है—हां, और इसकी पूरी व्यवस्था है कि इस

करन्ट को मन तक आने से कैसे रोका जा सकता है। इसकी पूरी-पूरी व्याख्या हमने पुष्प नं० १ में तथा पुष्प नं० ५ के साधन नं० २ यानि ध्यान की व्याख्या में पूरी तरह की है। पढ़िये।

दूसरा आजकल के बुद्धिमान लोगों (क्या, क्यों, कैसे करने वालों) का सवाल हो सकता है कि हमारे मन में कोई सत्ता नहीं होती इस बात को मिसाल देकर समझाया जाय। इसके जवाब में यह कहा जा सकता है कि इसकी मिसाल तो आप-हम सब हैं, दुनियां के सभी लोग जागृत अवस्था में कोई न कोई काम या धन्धा तो करते ही रहते हैं। रात को खाना खाकर लेटे नहीं कि स्वप्न अवस्था आगई, हम जिस्म से तो कुछ करते नहीं पर स्वप्न अवस्था में तरह-तरह के काम, तरह-तरह के द्रव्य, तरह-तरह की अवस्थाएं कूदना, फाँदना, लड़ना, चलना, मोटर चलाना, रेल चलाना इत्यादि दिखाई देते रहते हैं। अब सोचिए कि हमारी जागृत अवस्था स्वप्न अवस्था में कैसे बदल गई। स्वप्न के बाद खर्राटे की नींद आ गई। जिस अवस्था का नाम सुषुप्ती अवस्था या गहरी

नींद है। प्रकृति का नियम है कि किसी भी चीज की अवस्था तब बदलती है जबकि उस चीज में या तो कोई चीज मिला दो या जोड़ दो या उसमें से कोई चीज निकाल दो।

तो आईये अब सोचें कि हमारे शरीर की ये तीन अवस्थाएं बदली तो क्या चीज निकाली गई या जोड़ी गई। प्रकृति का यह भी नियम है कि जब जागृत अवस्था में काम करते हुए, सोचते हुए, विचारते हुए, जब तन व मन थक जाते हैं तो उनको आराम देने के लिए ये अवस्थाएं प्राकृतिक, स्वाभाविक रूप से आती रहती हैं। मन जिसको जड़ कहा गया है उसमें ऊपर से, हमारे जीव की यानि सुरत की जब तक चेतन-शक्ति नहीं आ जाती, मन अपना काम यानि सोचना विचारना, छोड़ देता है। इस चेतन-शक्ति को संत लोग सुरत कहते हैं। जागृत अवस्था में यह सुरत हमारे काले तिल, जो दोनों भौहों के बीच में होता है या आँजना चक्र पर बैठकर, मन की धाराओं को चेतनता देकर कर्म इंन्द्रयों को चेतनता देती है और कर्म इंन्द्रीयां काम करने लगती हैं। स्वप्न अवस्था में वह चेतन शक्ति अर्थात सुरत त्रिकुटी पर जा

बैठती है और यह त्रिकुटी मन की जागृत अवस्था होती है। इस कारण हमारे चित्त पट पर अंकित वे काम व दृश्य जो हमने इस जन्म या पिछले जन्म में किए है अंकित रहते हैं और वे स्वप्न में दिखाई देते रहते हैं। गहरी नींद में यह चेतन शक्ति त्रिकुटी को छोड़ कर दसवें द्वार से आगे, महाशून्य में चली जाती है और मन अपना काम करना छोड़ देता है। तब बेहोशी या गहरी नींद की अवस्था आ जाती है। अगर मन में अपनी शक्ति होती तो गहरी नींद की अवस्था में भी उसको खट पट करना चाहिए था।

इस तरह मन से सुरत को अलग करके बेकार यानि क्रियाहीन किया जाता है और इस क्रियाहीनता को ही लोग मन को बस में करना, मन को जीतना और या मन को मारना कह देते हैं। विशेष व्याख्या के लिए देखिए पुष्प नं० १, १३ व २१।

नोट :—आंजना चक्र, त्रिकुटी और महाशून्य के स्थानों को जानना हो तो कृप्या चित्र जो हमने पुष्प नं० ५ में दे रखा है, देखिए।

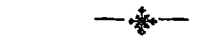

पुष्प नं० २३

प्रश्न :—सुरत नहीं चढ़ै कहा करिये ?

उत्तर :—यह सवाल हरेक आदमी के दिल में नहीं उठता है सिर्फ उन इने गिने आदमियों के दिल में उठता है जो संतमत के सिद्धान्तों के अनुसार (सुरत-शब्द-योग या नाम की भक्ति) साधन में लगे हुए हैं और कभी-कभी जिनकी सुरत किन्हीं-किन्हीं कारणों से गिरती रहती है।

बाकी लोग न इस सवाल को समझ सकते हैं और न ही इस जवाब को। इस सवाल व जवाब को समझने के लिए जरूरी है कि पहले यह समझा जाय कि सुरत क्या वस्तु है। संतलोग जीव या रूह को ही सुरत का नाम देते हैं और इस सुरत को ही चेतन का बुलबुला कहते हैं। जैसे पानी में बुलबुला दो वस्तुओं यानि पानी व हवा से मिलकर बनता है इसी तरह सुरत यानि अनामी पुरुष के अंश पर भान-बोध यानि चेतनता का एक खोल चढ़ जाने से 'सुरत' यानि चेतन का बुलबुला बनता है। या यों कहिए कि सुरत वास्तव में चेतनता या भान-बोध

में फंसा हुआ अनामी पुरुष ही है क्योंकि :—

बून्द समानी सिन्धु में जानत है सब कोय।
सिन्धु समाना बून्द में, जाने बिरला कोय॥

सुरत की व्याख्या दाता दयाल जी ने इस तरह से की है कि सु=अच्छा, और रत=खेल। सुरत का खेल क्या है ? जीना और मरना। और जब तक यह चेतनता का परदा खत्म नहीं हो जाता यह सुरत खेल खेलने के लिए मजबूर है। और यह चेतनता का परदा बिना सुरत-शब्द योग या नाम की भक्ति के खत्म नहीं होता। इसे पूरी तरह समझने के लिए पढ़िये पुष्प नं० ४, ५ व २२।

सुरत को समझ लेने के बाद सुरत के स्वाभाविक गुणों को समझने की जरूरत है जो कि इस तरह है :—

(१) सुरत एक समय में एक ही जगह रह सकती है न कि मन की तरह डावाँ डोल। इसको ऐसे समझा जा सकता है। आप बड़ी श्रद्धा व गौर से किसी वृद्ध पुरुष का सतसंग सुन रहे हैं उसी में अगर आपको कोई ख्याल आ जाय जैसे कि चप्पल आप उतार कर आए हैं, कोई ले न जाय, या इसी

तरह का कोई ख्याल आ जाय तो आप उस सतसंग को उतनी देर सुन नहीं सकते। अगर सुरत दो जगह रह सकती होती तो उस ख्याल में रहते हुए भी उस सतसंग को भी सुनना चाहिए था। पर ऐसा नहीं होता। इस सिद्धान्त के अनुसार मैं साधकों से यह भी कहता रहता हूं कि साधन के वक्त (समय) में वे ख्यालात जिनको गुनावन भी कहते हैं, नहीं उठाना चाहिए। मैं यह भी कहूंगा कि एक ही समय में तीनों साधनों यानि सुमिरन, ध्यान, और भजन को नहीं करना चाहिए। यानि जब सुमिरन कर रहे हो तो सारी सुरत सुमिरन में लगाओ। ध्यान और भजन को उतने समय के लिए भुला दो और जब ध्यान का साधन करना हो तो सुमिरन व भजन को भुला दो और जब भजन यानि शब्द को अन्तर में सुनना व प्रकाश को देखना हो तो सुमिरन व ध्यान को भुला देना चाहिए।

अपने अनुभव के आधार पर मैं तो इतना ही कहूंगा कि जब शब्द सुनने का अभ्यास करो तब

प्रकाश न देखो और प्रकाश का अभ्यास करो तब उतनी देर तक शब्द न सुनो ।

(२) स्वाभाविक सुरत के गुण :—सुरत प्रकाश की ओर खिचती है। आप किसी ख्याल में महव हो या पूरी तवज्जा से कोई वचन सुन रहे हो और जोर का धमाका हो जाय या तेज प्रकाश या रोशनी हो जाय तो एक लम्हा (क्षण) आप की सुरत उस प्रकाश की ओर खिच जावेगी । तभी तो पहले जमाने के राजा महाराजा दिन भर के राज्य काज से थके हुए परेशान हुए शाम को नफिरी व नगारे बजवाते थे कि सुरत उनकी तरफ खिंच जाती थी चिन्तित मन को छोड़ कर । आजकल हम लोग सिनेमा देखते हैं और देखते-देखते घर की व मुल्क की परेशानियों को भूल जाते हैं क्योंकि हमारी सुरत चिन्तित मन को छोड़कर चित्रों व प्रकाश व शब्द की ओर जो सिनेमा घर में होते रहते हैं की और आकर्षित हो जाती है ।

(३) स्वाभाविक गुण नं० ३ :—सुरत जितनी देर को जहां जमती है वह उसी का रूप हो जाती है ।

हम ऊपर कह आए हैं कि सुरत अनामी पुरुष का अंश है। और अनामी पुरुष सुरत की ओर और सुरत अनामी पुरुष की ओर खिचती रहती है। जैसे कि बच्चा मां की ओर और मां बच्चे की ओर। तब तो सुरत को अनामी पुरुष की ओर अपने आप ही चढ़ जाना चाहिए लेकिन ऐसा नहीं होता। इसलिए कि सुरत को अनामी धाम से इस माया देश तक पहुंचने के लिए कई देश यानि लोकान्तर में होकर गुजरना होता है और उन देशों में मौजूद पदार्थों का लेप चढ़ते-चढ़ते वह इतनी भारी हो जाती है कि अनामी पुरुष की ओर खींचने वाली शक्ति सुरत को खींचने में असमर्थ हो जाती है। वैसे तो सुरत को सन्तों ने फूल की खुशबू के बराबर हल्का बतलाया है लेकिन रास्ते में सबसे पहले वह चेतन देश में आती है और चेतन देश, सार शब्द का देश है। उस देश में आने पर उस पर चेतनता चढ़ जाती है और वह अब चेतनता अथवा बोधन-शक्ति का बुलबुला, अस्तित्व बन जाती है। वहां से चलकर वह आनन्द व प्रकाश के देश में आती है और उस चेतन के बुलबुले पर प्रकाश, जो आत्मा का रूप है का दूसरा

लेप चढ़ जाता है। उससे आगे चल कर उसको ब्रह्म देश से होकर गुजरना होता है। ब्रह्म देश ख्यालों का देश है और उसको झीनीं या सुक्ष्म माया भी कहते हैं। इस देश में आकर सुरत पर और लेपों के साथ संकल्प-विकल्प का लेप चढ़ जाता है। उसके आगे या यूं कहिए कि नीचे यह माया का देश है जिसमें आकर हमारी सुरत पर यह स्थूल शरीर का लेप चढ़ जाता है और इस तरह से उस सुरत पर इतना बोझ चढ़ जाता है कि वो अपने आप को बिना इन बोझों को हटाये व अनामी पुरुष की ओर खिंचती रहने पर भी अनामी धाम में पहुंच नहीं सकती, जब तक कि ऊपर बयान किए हुए सुरत पर से वे सब लेप न उतर जाएं जिनका ऊपर ज़िक्र किया जा चुका है। इसलिए ऊपर के सवाल कि "सुरत नहीं चढ़े कहा करिए" का यह जवाब हो सकता है कि "तन मन में अटक रही क्यों चढ़िये"। जब से हम सुरत बने हैं तभी से हम पर ऊपर वर्णन किए हुए लेप चढ़ते गए और अन्त में हमारी सुरत तन व मन में आकर फंस गई। और इसके साथ रहते-रहते ऐसी घुलमिल गई है कि मुश्किल से समझ में आता है कि

हमारे तन में, मन के सिवाय कोई और ऐसी शक्ति भी है जिसे सुरत कहा जाए। इसलिए किसी मज़हब की किताबो में इस सुरत का कोई ज़िक्र नहीं पाया जाता, सिवाय संतमत की किताबों के। हां, शास्त्रों में जीव के लिए यह तो कहा गया है कि हमारा जीव जड़ व चेतन की ग्रंथि यानि गांठ है। कहीं कहीं ऐसा शास्त्रों में उल्लेख पाया जाता है कि :—

जड़-चेतन, ग्रंथी पड़ गई, भाषत जूठी, छुटत कठीनई।

इसको सन्तों ने इस तरह कहा है कि :—

झण्ड लगी है सुरत की, मन माया के साथ।

बात वही हुई कि सुरत जो चेतन है उसकी झण्ड, मन जो जड़ पदार्थ है, उससे लगी हुई है। सुरत को इस तन मन से निकालने के लिए सहस्त्र उपाय बताए हैं और उन उपायों का निचोड़ यह है कि जिनको अपनी सुरत पर चढ़े हुए लेपों को उतार कर अनामी धाम में पहुंचना हो उनको यह उपाय करना होगा कि :—

निकल तन से, फिर तू मन से, निकल बेख्याली में आ।
आत्मा के निकट अज खुद पहुंचता तू जायेगा।
आत्मा में ठहर कुछ आनन्द ले, आनन्द ले।

छोड़ दे आनन्द को निज रूप दर्शन पायेगा।
आनन्द रचना में रहे, त्रिकुटी बसे आनन्द में।
भेद दे आनन्द त्रिपुटी, निज रूप दर्शन पायेगा।
निज रूप दर्शन पायेगा, निज रूप दर्शन पायेगा।
शान्ति का दौर तुझको दौड़ कर खुद आयेगा॥

इसके लिए सन्त लोग यह साधन बताते हैं कि तन से सुरत को निकालने के लिए सुमिरन व अजपा जाप करो और मन से निकलने के लिए गुरु मूर्ति का ध्यान करो। आनन्द रूपी आत्मा से निकलने के लिए वे भजन का साधन बतलाते हैं। भजन का साधन क्या है कि अंतर में होने वाले प्रकाश को देखना व शब्दों को सुनना और शब्दों को सुनते-सुनते सार शब्द में पहुंचना। सार शब्द में पहुंच कर उसका अभ्यास काफी समय तक करने पर अजखुद अशब्द गति आ जाती है अर्थात् चेतनता या भान-बोध जो सार शब्द से सुरत ने लिया था वह वापिस सार-शब्द में चला जाता है और हमारी सुरत निर्लेप होकर या निरत होकर अनामी पुरुष में समा जाती है। लेकिन चूंकि यह साधन हम शरीर में रहते हुए करते हैं उस अशब्द गति में कोई हमेशा के लिए ठहर नहीं सकता। यह

अशब्द गति किसी भाग्यशाली पुरुष को ही कभी-कभी थोड़ी देर को आती है। पर चाहे यह थोड़ी देर को ही क्यों न आ जाय इसके आ जाने पर यह अनुभव हो जाता है कि मैं क्या हूं व अनामी पुरुष क्या है, यह रचना कैसे हुई और हमारी सुरत इस रचना में कैसे फंस गई और फंसी हुई सुरत उस अनामी पुरुष में कैसे समा जाती है। उस अनामी पुरुष में जिसके लिए अनुभवी पुरुष कहते हैं कि :—

साक्षात् किया जिसने उसका वे ऋषि मुनि, योगी कहते क्या।
वह अकथ, अनाम, अमाया है, निगुर्ण है आगे कहते क्या॥

नोट :—१. इस विषय पर और अधिक चर्चा पुष्प नं० १, ४, ५ और २२ में भी की गई है। उसे भी पढ़िये।

२. जिन देशों या ऊपर के मण्डलों का ज़िक्र इस पुष्प में आया है उसकी पूरी-पूरी व्याख्या चित्र सहित आगे के पुष्पों में की जावेगी। पर उसको वे ही समझ सकते हैं जो सुरत शब्द या नाम की

भक्ति का साधन करते-करते दसवें द्वार से आगे या उससे भी आगे पहुंच गये हों। इससे आगे दूसरे भाग में यह बताया जावेगा कि किस मुकाम या देश में पहुंचने पर सुरत में क्या-क्या शक्तियां व गुण आ जाते हैं।

३. चूंकि यह विषय अत्यन्त गूढ़ है सिर्फ १ या २ बार पढ़ने पर पूरी तरह समझ में नहीं आना इसलिए इसे कई बार पढ़ना चाहिए। साथ ही यह विषय बहुत विस्तृत है जो कि कागज के थोड़े सफों में पूरा-पूरा नहीं दिया जा सकता। इसलिए इसको समझने व समझाने के लिए किसी अनुभवी साधक की शरण में जाना चाहिए।

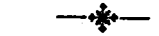

पुष्प नं० २४

साधन में सहायक व बाधक प्रतिक्रियाएँ

हमारा मन जाग्रत अवस्था में नाना प्रकार के विचार उठाता रहता है उनमें से कोई कोई तो साधन में सहायक होते हैं और कोई कोई बाधक।

आईये अब देखे कि मन क्यों विचार उठाता है और उनमें से कौन कौन से विचार सहायक होते हैं और कौन से बाधक।

१. जरूरी :—हर जीवित मनुष्य के साथ जीवन निर्वाह के लिए कुछ जरूरतें लगी रहती हैं जैसे शरीर को जीवित रखने के लिए भोजन, जाड़े व गर्मी से बचने के लिए कपड़ा, रोगी होने पर दवाईयाँ और इन सबको इकट्ठा करने के लिए पैसे की जरूरत होती है और पैसा कमाने के लिए कोई धन्धा जैसे खेती, व्यापार, नौकरी आदि करना ही पड़ता है और इन कामों को पूरा करने के लिए नाना प्रकार के विचार मन में उठते हैं और उनको पक्का करना पड़ता है और उसके अनुसार चलना

पड़ता है। जब इन्सान इन जरूरी कामों को नेक-नियती के साथ व मानवता के सिद्धान्तों के अनुकूल करते हैं तो इन कामों के करने में जो विचार उठते हैं वे साधन में सहायक होते हैं और जब इन्सान इन जरुरी कामों को बदनियती से करते हैं तो उनको करने में जो विचार मन उठते हैं वो साधन में बाधक होते हैं।

२. अत्यन्त जरूरी :—वे विचार जो हमारे अन्दर जीव आत्मा के कल्याण के हेतू उठते हैं, जिनको परमार्थ या परलोक की कमाई के लिए कहे जाते हैं वे सब साधन में सहायक होते हैं। जैसे भक्ति करना, योग अभ्यास करना इत्यादि इत्यादि।

३. गैर जरूरी :—अक्सर मन ऐसे विचार उठाता रहता है और खास कर साधन के समय जिनका ऊपर बताए हुए जरूरी और निहायत जरूरी कामों से कोई संबंध नहीं होता है—जैसे कि किसी प्रेमी या रिश्तेदार के सफर पर जाने पर यह ख्याल उठना कि कहीं एक्सीडैन्ट न हो गया हो, या धनी लोगों का यह ख्याल करना कि हमारे कोई चोरी या डकैती न हो जाय, या माल में घाटा न हो जाय इत्यादि इत्यादि। ये विचार साधन में अत्यन्त बाधक होते हैं।

४. स्वाभाविक विचार :—मन के स्वाभाविक गुण हैं, काम, क्रोध, लोभ, मोह और अंहकार। दुनियां में विचरते हुए इस मन के स्वाभाविक गुणों के कारण अकारण व अनावश्यक विचारों का उठना। इस तरह मन के उठाए हुए विचार साधन में अत्यन्त बाधक होते हैं। जबकि इन स्वाभाविक गुणों के कारण आवश्यकतानुसार या कारणवश उठाए हुए विचार यद्यपि सहायक नहीं होते तो बाधक भी नहीं होते जैसे कि किसी आतताई के अपने साथ जुल्म करने पर क्रोध का आना, अच्छी सन्तान पैदा करने के हेतू काम अग से काम लेना इत्यादि २। ऐसे विचार सहायक नहीं होते तो बाधक भी नहीं होते। साथ ही यह भी स्वाभाविक है कि हमारा तन मन, आत्मा व सुरत हमेशा एक हालत में रहना नहीं चाहते या यों कहिए कि तबदोली पसन्द हैं और ये तबदिलीयाँ बिना विचारों के तबदील हुए नहीं आ सकतीं। ऐसी तबदिलीयों के लिए जो विचार उठते हैं वे भी दो प्रकार के होते हैं एक तो तन, मन व आत्मा के कल्याण हेतु तबदीली लाने वाले सहायक विचार और दूसरे तबदीली

लाने वाले विचार वे होते हैं जो तन, मन आत्मा और सुरत को हानि पहुंचाने के लिए पैदा होते हैं। वे विनाशकारक होते हैं और अत्यन्त बाधक होते हैं।

५. अनिवार्य निचार :—हरेक इन्सान का जन्म इसलिए होता है कि पिछले जन्म में किसी से लेना व देना बाकी रह जाता है और वह इस जन्म में आकर किसी से भाई बन कर लेता देता है किसी से मां, बाप, स्त्री, गुरू, शिष्य, मित्र या शत्रु इत्यादि बन कर लेता देता रहता है और इसलिए इनको अनिवार्य कहा जाता है। परन्तु जो लोग इनको अपना कर्त्तव्य समझ कर काम करते हैं, फल को मौज के आधीन छोड़ कर काम करते हैं तो उन कामों को करने के लिए जो विचार पैदा होते हैं वे यद्यपि सहायक नहीं होते तो बाधक भी नहीं होते। हां, अगर इन कामों को भार समझ कर किया जाता है तो वे विचार जो इस लेन देन के कामों में उठते हैं वे बाधक अवश्य होते हैं।

ऊपर दी हुई व्याख्या से हम यह अच्छी तरह पता लगा सकते हैं कि कौन से विचार साधन में सहायक हो सकते हैं और कौन से

बाधक। साधन में तरक्की करने के लिए सहायक विचारों को अपनाना होगा और बाधक विचारों से छुटकारा पाना होगा।

अब सवाल पैदा होता है कि बाधक विचार भी साधन करते वक्त आते ही रहेंगे तो उनसे छुटकारा कैसे पाया जाय? उनसे छुटकारा पाने का केवल एक मात्र उपाय है—गुरु की शरणागत होना। पर गुरु के भी चार रूप होते हैं। जैसे कि :—

चोला. नूर और तूर और अनुभव का सार।
चाहे जिसकी शरण लो, गुरू के रूप हैं चार॥

अनुभव का सार यानि अकह अवस्था, या अशब्दगति अवस्था किसी की भी हमेशा नहीं बनी रह सकती, क्योंकि यह अवस्था कभी कभी उनको ही प्राप्त होती है :—

जिन पर दया आदि कर्ता की।
वो ही यह नियामत पावे॥

तो बाधक विचारों से छुटकारा पाने के लिए रूरी हो जाता है तूर यानि शब्द गुरु के शरणागत ना जो कि वास्तव में हमारा सतगुरु या सच्चा न है। जैसे कि हजूर शालीग्राम जी की प्रेमवाणी आता है कि :—

सखी री मोही, मत रोको।
मैं तो जाऊगी, सत गुरू पास ॥
सतगुरू हमारे अधर बिराजे, जहां संतन का बास।
पिण्ड, अण्ड, ब्रह्माण्ड से आगे, अलख अगम में निवास ॥

इस वाणी का तात्पर्य है कि सखी यानी सुरत कह रही है कि सखी (यानि मन की वृत्तियां) मुझे उस सतगुरू के पास जाने से मत रोको जो अधर में यानी अलख व अगम में, जहां कि सन्त अथवा सन्तों कि सुरतें बास करती हैं और वह मुकाम है सार शब्द, अथवा शब्द ब्रह्म का जिसमें सुरत को लीन करके इन बाधक विचारों से छुटकारा मिल सकता है। लेकिन हर साधक को यह शब्द ब्रह्म अथवा सार शब्द की पहुंच नहीं होती, ऐसे साधक को नूर अथवा प्रकाश, जिसे सन्त लोग पारब्रह्म कहते हैं, की शरण में जाने से इन बाधक विचारों से छुटकारा मिल सकता है और जिनको यह प्रकाश भी अभी तक अन्तर में प्रगट नहीं होता उनको गुरु के चोले अथवा मूर्ति के ध्यान में तल्लीन होने पर ही इन बाधक विचारों से छुटकारा मिल सकता है। यानि

है उसी गुरु की शरण लेने पर इन बाधक विचारों से छुटकारा मिल सकता है।

साथ ही जिन बाधक विचारों से छुटकारा पाना हो उसको आगे बताई हुई तरकीब भी छुटकारा पाने में सहायक होती है और वह तरकीब यह है कि पहले उन बाधक विचारों को छोड़ने का दृढ़ संकल्प करे, और प्रतिदिन सोते समय २-३ मिनट को यह विचार करे कि आज ये बाधक विचार कब-कब और कौन-कौन से आए और यह संकल्प बनाए कि कल से इनको नहीं आने देंगे और साथ ही अपने इष्ट से यह प्रार्थना करे कि हमें इन बाधक विचारों से छुटकारा पाने में सहायता करें। धीरे-धीरे इन बाधक विचारों से छूट जाने में बड़ी मदद मिलती है। दूसरा साधन में बाधक होता है शब्द का बाएं कान में सुनाई देना।

हमारे भक्तियोग में बाएं हिस्से को काल का मता और सीधे हिस्से को दयाल का मता माना जाता है। ऐसा इसलिए माना जाता है कि हमारे चोटी के मुकाम से जो सुषुम्ना नाड़ी चलती है उसी के साथ एक नाड़ी बाईं ओर को चलती है जिसे

सन्तों की भाषा में पिंगला कहते हैं और दाईं ओर एक और नाड़ी चलती है उसको इङ्ला नाड़ी कहते हैं। सुषुम्ना नाड़ी से हमारी सुरत (जीव) नीचे से ऊपर व ऊपर से नीचे की ओर जाती रहती है और यह इतनी बारीक है कि खुर्दबीन से भी नहीं देखी जा सकती और जितने भी चक्र, सहसदल कमल, त्रिकुटी वगैरा हैं इस नाड़ी के अन्दर ही मुकीम रहते हैं और इन चक्रों में नाना प्रकार के प्रकाश व शब्द सुनने व देखने की शक्तियां मौजूद रहती हैं जो कि साधक को साधन करते समय इस मुकाम पर पहुंचने पर दिखाई देती हैं। दाईं ओर की इङ्ला नाड़ी में हमारे अच्छे ख्यालात भरे रहते हैं और पिंगला में बुरे ख्यालात और इन ख्यालातों के अनुसार ही सिर के बांऐ हिस्से को काल मता व सीधे हिस्से को दयाल मता माना जाता है और यह शब्द जो कभी-कभी बाएं कान से सुनाई देता है यह काल मते का शब्द हमारी सुरत को बहकाने के लिए होता है और इस शब्द में सुरत को ऊपर की ओर खींचने की ताकत नहीं होती। इसलिए यह साधन में बाधक होती है। कभी-कभी

तो इस शब्द को सुनते-सुनते भय लगता है और उदासी छा जाती है। इसलिए इस बांई ओर के शब्द को जल्द से जल्द बन्द करके दाँई ओर के कान को ओर लगाना चाहिए। इस बांई ओर के शब्द को दांई ओर के कान में लाने के लिए मैंने जो सफलता पूर्वक यत्न किया है वह यह है कि जब भी कभी यह शब्द बांई ओर का सुनाई दिया तो मैंने उसको दांई ओर लाने के लिए गुरु मूर्ति को ध्यान से दाएं कान में बिठाने का यत्न किया और उसके दांई ओर बैठ जाने पर शब्द खुद दांए कान में सुनाई देने लगता है। फिर वह धीरे-धीरे उसी मुकाम पर होने लगता है जिस मुकाम का साधक अभ्यस्त होता है।

६. साधन को जरूरत से ज्यादा देर तक करते रहना :—साधन इस तरह व इतनी देर करना चाहिए कि साधन करते हुए हमारा तन, मन व सुरत उकता न जाय। अथवा Bore न हो जाय। तन मन व सुरत के उकता जाने पर साधन में अरुचि पैदा होने लग जाती है और फिर साधन में विघ्न

पैदा होता है । साधन चाहे प्रतिदिन केवल आधा घंटा ही किया जाय पर पूरी लगन के साथ किया जाय तो वह उस साधन से कहीं बेहतर होता है जो कि बिना पूरी लगन लगाये घण्टे या दो घण्टे किया जाता है । जो साधन पूरी लगन के साथ सिर्फ आध घण्टा ही किया जाता है तो उस साधन के करते समय जो आनन्द आता है उसका असर दिन भर बना रहता है ।

ठीक ऐसे ही जैसे कि हम पानी को आग पर रखकर खूब गरम कर लेते हैं तो वह आग से उतारते ही फौरन ठंडा नहीं हो जाता बल्कि काफी देर तक उस गरमी का असर पानी में रहता है । जब हमको भूख लगती है उस भूख को तृप्त करने के लिए हम भोजन खाते हैं, पर जरूरत से ज्यादा खाने पर खाने में अरुचि पैदा हो जाती है । इसलिए खास कर प्रकाश और शब्द का साधन सिर्फ इतनी देर तक करना चाहिए कि उसे करते-करते हमारे तन, मन व सुरत पर इतना बोझ न पड़े कि साधन में अरुचि पैदा हो जाय । हाँ सुमिरन, ध्यान का साधन हर समय किया जा सकता है ।

हम इस संसार में आकर अपने तन, मन व सुरत की जरूरत को पूरा करने के लिए संसार में विचरते हुए नाना प्रकार की क्रियाएं करते अथवा खेल खेलते रहते हैं पर कोई खेल इतनी देर नहीं खेलते कि हम उकता जायें अथवा हमारा तन, मन व सुरत सम अवस्था में न रहें। सन्तों ने कहा है कि :—

बन्दे खेल तू ऐसा खेल,
तीन तार तेरे वीणा के, हो न जाय बे मेल।
पहला तार लगा इस तनका, दूजा मन का मेल।
तीजा तार सुरत का लागा, कर रही सारे खेल॥
बन्दे खेल तू ऐसा खेल।

पुष्प नं० २५

संत तब तक भय करे जब तक पिन्जर साथ।

गृहस्थ जनों को चाहिये, हरदम रहें डरात।

यह एक परम संत की वाणी है जिसका अर्थ यह है कि संतों को भी जिनकी सुरत अधिकतर अलख

और अगम लोक में रहती है और जिसे शरीर की हाजतें रफा करने को व शरीर की जरूरियात को पूरा करने के लिये त्रिलोकी यानि शरीर, मन, व आत्मा में दिन में कुछ एक बार आना पड़ता है, संतों को चौकन्ना रहना चाहिये कि इस त्रिलोकी में आते समय कहीं इसमें फिर फंस न जांय ।

त्रिलोकी में फंसने के अवसर आते रहते हैं और खासकर मन, अथवा मन के लोक में तो फंसावट ही फंसावट है । मन क्या है ? मन है काल, या उस शक्ति या पुरुष का अंश या बेटा या प्रतिनिधि जो इस विश्व की रचना करता है और उस रचना करने वाले को अधिकार प्राप्त है कि सुरतों को अथवा जीवों को रचना से बाहर नहीं जाने दे क्योंकि बिना सुरतों की मदद के वह इस विश्व की रचना पूरी तरह कर नहीं सकता । अगर सुरतें रचना में न हों तो फिर जो आजकल रेलें, हवाई जहाज, अन्न पैदा करने के लिये खेती इत्यादि इत्यादि कौन करे और कौन चन्द्रमा पर जाकर यह पता लगाये कि चन्द्रमा में जीव अथवा सुरतें नहीं रहतीं और उनके नहीं रहने के कारण चन्द्रमा

में वे वस्तुयें नहीं दिखाई देतीं जो हमारी पृथ्वी पर मौजूद हैं या नित नई मौजूद की जारही हैं। चन्द्रमा में सुरतें नहीं होने के कारण चन्द्रमा जब जैसा बना था वैसा ही अब भी मौजूद है और वहां के धरातल पर सिवाय पहाड़, खाइयां, सुरंगें धूल इत्यदि ही पाई जाती हैं। सिद्ध हुआ कि विश्व की रचना पूरी तरह से करने के लिए सुरतों का विश्व में रहना जरूरी है। इसलिए काल पुरुष जिसकी जिम्मेदारी विश्व की रचना करना है वह कोशिश करता है कि कोई भी सुरत विश्व के बाहर चली न जाए। ठीक ऐसे ही जैसे कि हम अपना मकान बनवाने के लिये ऐक मैनेजर मुकर्रर करें और उसे मकान बनाने का सामान ईंटें, सीमेंन्ट, लोहा व लकड़ी व २० मजदूर दे दें तो वह मैनेजर एक भी मजदूर को गैर हाजिर नहीं होने देगा जब तक कि मकान पूरा न बन जाय। काल पुरुष बाहर की रचना करता है और हमारे शरीर की रचना करने के लिये उसने एक अपना प्रतिनिधि या यों कहिये कि अपना बेटा हमारे शरीरों में भी तैनात किया हुआ है जिसे हम मन कहते हैं और वह मन

हमारी सुरत को अपने में फंसाए रखना चाहता है और उस सुरत को रचना से बाहर जाने से बहका कर या फुसला कर रोकता रहता है। इस मन को संतों ने बंझा का बालक बतलाया है। सार बचन में एक वाणी है :—

बंझा ने बालक जाया, जिन सकल जीव भरमाया।
अग्यानी नाम कहाया, जिन माया सबल उपाया॥
ब्रह्मा और विष्णु महेशा, नारद और सारद शेषा।
ऋषि मुनी और जोगी ग्यानी, सबों को ले उन धर खाया॥
वेद पुरान शास्त्र परमाना, दे दे जीवन अधिक भुलाया॥
इत्यादि—

यह मन सब जीवों को भरमाता रहता है कि सुरत उसके दायरे से निकल न जाय। इसलिये तो संतों ने तथा परम संतों ने यह कहा है कि संतों को डरना चाहिये अथवा चौकन्ना रहना चाहिये कि जब तक उनको सुरत के साथ पिन्जर अथवा मानस का जिन्दा चोला लगा हुआ है जिसकी जरूरतों को रफा करने के लिये उस शरीर में आती है जिसमें दसों इन्द्रियाँ विराजमान हैं तथा उस मन में आती है जिसमें स्वाभाविक गुण काम, क्रोध, लोभ, मोह व अहंकार बसे हुए हैं, इनमें फंस न जाय। उन

संतों को और भी चौकन्ना रहने की जरूरत है जिन्होंने जगत कल्याण का काम जैसे सतसंग कराना, नाम दान देना इत्यादि अपने जिम्मे ले रखा है और उनसे ज्यादा उनको चौकन्ना रहने की जरूरत है जिन्होंने कोई गद्दी, मठ या मंदिर के संचालन का काम भी अपने हाथों में ले रखा है। क्योंकि इन कामों को करने के लिये उनकी सुरत को अनेकों बार दिन में व रात में त्रिलोकी में आना पड़ता है। सबसे ज्यादा चौकन्ना रहना चाहिये उन साधकों को जो सुरत शब्द योग का अभ्यास गृहस्थ में रहकर कर कर रहे हैं क्योंकि उनकी सुरत को तो बार-बार त्रिलोकी में ही नहीं बल्कि अपने गृहस्थ की जरूरतों को पूरा करने के लिये संसार में विचरना व संघर्ष करना पड़ता है। ऐसा मैं क्यों लिख रहा हूं? इसलिये कि मैंने भी गृहस्थ में ही रह करके इस शब्द योग अथवा नाम की भक्ति का साधन किया है और एक काफी हद तक सफलता भी प्राप्त की है और अपने निज अनुभव के आधार पर लिखता हूं कि गृहस्थ में रहते हुये, इस साधन को करते हुये मुझे अनेकों रुकावटों यानि बाधाओं का सामना

करना पड़ा। कभी पैसे को कभी तो मुकदमें बाजी को, तो कभी अपने हाकिम से बिगाड़ लेता, कभी अपने मातहतों से मन मुटाव, कभी विरोधियों का विरोध, कभी समय का अभाव जिसके कारण मैं अक्सर गिरता रहा और कभी-कभी जो शब्द व प्रकाश अंदर प्रगट होते थे वे भी गायब हो जाते। तो फिर मुझे कैसे सफलता मिली ? यह सब रुकावटें होते हुये भी मैंने हिम्मत नहीं हारी और अक्सर अपने बुजुर्गों की इस कहावत को याद करके कि :—

गिरते हैं शाह सवार ही मैदाने जंग में।
वह तिफल क्या गिरे कि जो घुटनों के बल चले॥

साथ ही संतों की यह वाणी भी याद आती रहती थी कि :—

चलते चलते जो गिरे ताहि न लागे दोष।
जो घरते ही ना चले उनको लम्बे कोस॥

और अपने सतगुरु को पूर्ण पुरुष व वीतराग पुरुष मानकर उसको आज्ञा का पालन करता रहा तथा प्रेम व विश्वास के साथ नाम का सुमिरन और गुरु मूर्ति का ध्यान त्रिकुटी में करता रहा। इन सब बातों ने मेरी मदद की और जो कुछ थोड़ी बहुत

सफलता मिली है उन सबका कारण गुरु मूर्ति का ध्यान सबसे श्रेष्ठ साधन मेरे लिये सिद्ध हुआ।

वीत राग सत पुरुष का, जो नित करते ध्यान।
तन के, मन के सुख मिलें, अन्त मिले निर्वाण।

मेरे इस कथन की एक हद तक पुष्टि अथवा ताईद होती है नीचे दिये हुये सार बचन के इस शब्द से :—

मुसाफिर रहना तुम हुशियार, ठगों ने आन बिछाया जाल।
अकेले मत जाना इस राह, गुरु बिन नहीं होगा निर्वाह।
जमा सब लेंगे तेरी छीन, करेंगे तुझको अपना दीन।
ठगों ने रोका सब संसार, गुरु बिन पड़ गई सब पर धाड़।
मान लो कहना मेरा यार, संग इन तजना पकड़ किनार।
गुरु बिन और न कोई रखवार, कहूं मैं तुमसे बारम्बार।
होयगी मंजिल तेरी पार, गुरु से करले दृढ़ कर प्यार।
गुरु के चरन पकड़ यह सार, इन्द्री भोग भुलावत सार।
यहीं हैं ठगिया करत ठगार, कहें राधास्वामी तोहि पुकार।
सरन में आजा लेऊं सम्भार, नाम संग होजा होत उधार।

इन गृहस्थी भाइयों से जो गृहस्थ में रह करके मेरी तरह सुरत शब्द योग या नाम की भक्ति का साधन कर रहे हैं, अपने निजी अनुभव के आधार पर निवेदन करूंगा कि उनको जल्दबाजी नहीं करनी चाहिये। बहुधा लोग यह सुनकर व जानकर कि अंदर

में शब्द व प्रकाश प्रकट होते हैं, वे लालायित हो जाते हैं कि जल्दी से जल्दी अंदर के प्रकाश को देखें व शब्द को सुनें और सुमिरन व ध्यान को जिसके पक जाने पर शब्द व प्रकाश गुरु के इशारे से आसानी से खुल जाते हैं, उस सुमिरन व ध्यान पर ज्यादह तवज्जह नहीं देते और शब्द व प्रकाश को प्रगट करने की जल्दबाज़ी में लग जाते हैं। नतीजा यह होता है कि वह कहते फिरते हैं कि उनको तो मुद्दत हो गई साधन करते हुये न अभी प्रकाश दिखाई दिया और न शब्द ही सुनाई दिया। पहले मेरी खुद की भी यही हालत थी, लेकिन मैंने जब इस वाणी को पढ़ा कि :—

प्रथम श्रेणी है गुरुभक्ती। गुरु भक्ति बिन काम न रत्ती।
एक जन्म गुरु भक्ति कर, दूजे में सुन नाम।
जन्म तीसरे मुक्ति पद, चौथे में निज धाम।

यहां जन्म से मतलब है दर्जा का। तो शब्द व प्रकाश के साधन को छोड़ कर मैंने सारी शक्ति सुमिरन व ध्यान पर लगाई। इससे मुझे दो फायदे हुये। पहला तो यह, जैसा कि संतों ने वाणियों में फरमाया है, कि सुमिरन ध्यान करने से ऋद्धियाँ सिद्धियां आ जाती हैं और गृहस्थ की जरूरियात की चीजें प्राप्त

करने में जल्दी व सहूलियत हो जाती है। मैंने त्रिकुटी में गुरु मूर्ति का ध्यान करते-करते त्रिकुटी पर मूरत बनाई और मूरत बना कर यही प्रार्थना किया करता था कि काम, क्रोध और कर्ज मिटाओ, चित्त मेरे में शान्ति लाओ और इसका यह नतीजा हुआ कि कर्ज आसानी से उतर गया और काम, क्रोध जिनका अंग मुझमें उस समय जरूरत से कुछ ज्यादा था, उसमें भी कथने योग्य सुधार हुआ और दूसरा लाभ यह हुआ कि शब्द व प्रकाश आसानी से प्रगट होगये और उसमें दिन दूनी व रात चौगुनी तरक्की हुई या यों कहिये कि लोक सुख की सामग्री भी प्राप्त हुई और अलोक (परलोक) सुखको पाने का रास्ता खुल गया। मैं तो यही कहूंगा कि जो कुछ मुझे मिला है वह सुमिरन व ध्यान के तप से मिला है। इसलिये गृहस्थियों को सबसे पहले सुमिरन और ध्यान पर जोर लगाना चाहिये। तभी तो संतों ने कहा है कि:-

ध्यान मूलं गुरु मूर्ति।

अथवा सुरत योग को सिद्ध करने के लिये ध्यान जड़ (मूल) का काम करता है। इससे सबसे पहले संसार सुख की सामग्रियाँ प्राप्त करने में बड़ी

सहूलियत हो जाती है, साथ ही शब्द व प्रकाश प्रगट करने में बड़ी आसानी हो जाती है और जब पहला शब्द व प्रकाश प्रगट होगया तो उसमें सुरत को लय करने पर आगे के शब्द व प्रकाश अपने आप खुलते जाते हैं और सोपान दर सोपान शब्द सुनते-सुनते व प्रकाश देखते-देखते हमारी सुरत उस शब्द व प्रकाश में पहुंच जाती है जिसे अलख और अगम का प्रकाश व शब्द कहा जाता है और जिसे संत लोग सार शब्द और शास्त्र शब्द ब्रह्म कहते हैं और उस सार शब्द को सुनते सुनते अशब्द गति या अकह अवस्था का अनुभव हो जाता है। परन्तु इस सार शब्द यानि शब्द ब्रह्म तक पहुंचने के लिये यह भी जरूरी है कि शरीर में मौजूद दूसरे और तीन ब्रह्मों की भी प्राप्ति की जाय जिनकी व्याख्या अगले पुष्प में की गई है।

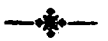

पुष्प नं० २६

सार शब्द या शब्द ब्रह्म्

हमारे शरीर में चार ब्रह्म मोजूद रहते हैं। पहला सबल ब्रह्म, दूसरा शुद्ध ब्रह्म, तीसरा पार ब्रह्म, चौथा शब्द ब्रह्म।

१. सबल ब्रह्म :—हमारे वीर्य का नाम सबल ब्रह्म है, जो लोग इस सबल ब्रह्म की परवाह न करके बिना जरूरत अनाप-शनाप वीर्य को नष्ट करते हैं वे शब्द ब्रह्म तो क्या शुद्ध ब्रह्म तक भी नहीं पहुंच सकते। मैं जब पहले पहल श्री हजूर परम दयाल जो से मिला तो उन्होंने मेरी सूरत देखकर य: आदेश दिया, 'कृषक! तुम अभ्यास के साथ-साथ मानसिक ब्रह्मचर्य भी रक्खा करो'। मैंने अर्ज किया कि महाराज मैं तो मानसिक ब्रह्मचर्य का अर्थ भी नहीं समझता। तो फरमाया कि मानसिक ब्रह्मचर्य का अर्थ है कि वीर्य नष्ट करने का मन में विचार भी उत्पन्न न हो। मैंने अर्ज किया कि मानसिक ब्रह्मचर्य का तो मैं इसलिये वचन नहीं दे सकता क्योंकि मैं अब तक

वीर्य को बिना जरूरत नष्ट करने में दिलचस्पी लेता रहा हूं, पर हां शारीरिक ब्रह्मचर्य पालन करने की कोशिश अवश्य करूंगा और तब से अब तक 22 साल हुये मैं इस वचन का 99% पालन करता रहा हूं, यद्यपि इस बीच में अपनी कमजोरी के कारण व दूसरे व्यक्तियों के फुसलाने के कारण कुछ एक ऐसे मौके आये कि मनको संभालना मुश्किल हो गया। लेकिन जब-जब ऐसे मौके आये तो मैं अपने आप को गुरु के आगे समर्पित करके प्रार्थना करता था कि मेरी रक्षा की जाय और इस तरह से रक्षा होती रही। इस वीर्य की रक्षा का मेरे शरीर व मन पर यह असर पड़ा कि मुझे आगे के शुद्ध ब्रह्म, पार ब्रह्म और शब्द ब्रह्म तक पहुंचने में बहुत ही मदद मिली। साथ ही 12 वर्ष बनारस में हिन्दु विश्व विद्यालय में रहते हुये जो मेरे शरीर में हाइड्रोसिल (फौते पढ़ने की बीमारी) हरनियां (आंतों की बीमारी) और फायलेरिया (फोल पान की बीमारी) का मैं शिकार हो गया था, इस वीर्य रक्षा के कारण वे सब बीमारियाँ दब गई या दूर हो गई और मैं बहुत स्वस्थ रहने लगा, और यह भी कहूं तो

अनुचित न होगा कि मेरी उमर भी बढ़ गई। बचपन से ही न जाने जन्मपत्री के आधार पर मेरी यह धारणा बन गई थी कि मेरी उमर बहत्तर (72) साल की होगी। परन्तु आज में चौरासी (84) वर्ष का हूं और अभी मौत नजर नहीं आती।

२. शुद्ध ब्रह्म :—शुद्ध ब्रह्म कहते हैं शुद्ध मन को, जिस तक पहुंचने के लिये सबल ब्रह्म की प्राप्ति बहुत मदद करती है। वह जो सबल ब्रह्म यानि वीर्य की रक्षा नहीं कर पाते उनका मन हमेशा डांवांडोल व चंचल रहता है जिसके कारण वह अधीर और चिन्तित रहते हैं और इस शुद्ध ब्रह्म को प्राप्त नहीं कर सकते।

३. पार ब्रह्म :—हमारे अंदर जो प्रकाश प्रगट होता है, संतों ने उसे पारब्रह्म कहा है। पर इसकी प्राप्ति उन्हीं को हो सकती है जो पहले सबल ब्रह्म व शुद्ध ब्रह्म की प्राप्ति कर लेते हैं।

४. शब्द ब्रह्म या सार ब्रह्म :—मेरा निजी अनुभव है कि पार ब्रह्म की प्राप्ति के बाद शब्द ब्रह्म व उससे आगे की अवस्था सुगमता से प्राप्त हो

जाती है, लेकिन, उनको जो कथनी को छोड़कर अमल करते हैं।

यह करनी का खेल है, नाहिं बुद्धि विचार।
कथनी तज करनी करे, तब पावे कछु सार॥

—✱—

पुष्प नं० २७

क्या वह गुरु जो मुक्ति दिलाने का दावा करता है, वह रोटियां नहीं दे सकता ?

समय ने मजबूर किया, ऐसा कहने के लिये।
रोटियां मिलती नहीं हैं जिन्दा रहने के लिये।
जिन्दा रहने के लिये, अभ्यास करने के लिये।
अभ्यास करने के लिये, रहनी बनाने के लिये।
या यों कहो कि मुक्ति को पाने लिए।

एक बार मुझसे एक सतसंगी ने यह सवाल किया था कि जो गुरु मुक्ति दिला सकता है, क्या वह रोटियां यानि शरीर के सुख की सामग्री नहीं दिला सकता ? मैंने उत्तर दिया कि भाई, मैं इसका

जवाब देने में इसलिये असमर्थ हूं कि मैं तो आज तक इस जिन्दगी में गुरु बना ही नहीं और न गुरु की हैसियत से काम किया है। तब मैं क्या जानूं कि गुरु क्या देता है और क्या नहीं, पर हां यदि एक सच्चा गुरुमुख, गुरु से प्रेम करे और विश्वास करे कि वह पूर्ण पुरुष है और उनकी आज्ञा का पालन करे तो वह लोक सुख व परलोक सुख दोनों को प्राप्त कर सकता है, बशर्तेकि वह इन सुखों को पाने की योग्यता व अधिकार प्राप्त करले। एक मेरा निजी अनुभव है :—

सांई के दरबार में. कमी वस्तु की नांहि।
बंदा मौज न पावहीं, चूक चाकरी मांहि।

योग्यता कैसे प्राप्त होती है ? इसको मैं श्री हजूर परम दयाल जी महाराज के शब्दों में ही वर्णन करता हूं। एक बार ऐसा मौका आया कि भरी सभा में जब श्री हजूर परम दयाल जी सतसंग करा रहे थे और अनामी धाम व मुक्ति का प्रसंग चल रहा था। तो मेरे पास बैठे एक सतसंगी ने दस का नोट दिखाकर कहा कि आज मैं सारे शहर में दस रुपये लेकर घूम आया पर मुझे कहीं अनाज नहीं मिल

सका। कहिये क्या खाकर जीऊं और क्या खा कर अभ्यास करूं कि मुक्ति पाने व अनामी धाम तक पहुंचने के दिन तक जिन्दा रह सकूं। उसकी बात सुन कर मुझसे न रहा गया और मैं खड़ा हो गया। पहले तो फटकार पड़ी कि तुमको अभी तक तमीज नहीं आई कि सतभंग हो रहा है और तुम लट्ठ की तरह खड़े हो गये, बैठ जाओ। मैं बैठा नहीं बल्कि और मुस्करा दिया। तब मेरे भाव को समझकर श्री हजूर बोले कि कुछ कहना चाहते हो? तो, मैंने अर्ज़ किया कि इधर तो आप निर्वाण पद का सतसंग करा रहे हैं, उधर मेरे पास बैठे लोग कानाफूसी कर रहे हैं कि भूख से भुक्ति पाने को अन्न तो मिल नहीं रहा जन्म मरण से मुक्ति पाने की भक्ति कैसे हो और कह रहे हैं कि "भूखे भक्ति न होय गुपाला, धरले अपनी कंठी माला"। इतना सुन कर महाराज जी निर्वाण की बातें छोड़कर कहने लगे कि भाई! लोग सच कह रहे हैं और अपने से बीती हुई बात का इस तरह वर्णन करने लगे कि एक दिन जब वे चौके में भोजन करने बैठे तो उनकी धर्मपत्नी यानि हमारी गुरुमाता ने उनसे कहा कि देखो जी! यहां सतसंगी आते जाते हैं, कोई कहता है कि मुझे

महाराज जी के प्रसाद से एक लाख का फायदा हो गया, कोई कहता है कि मेरा मकान बन गया, कोई कहता है कि मेरे यहाँ लड़का पैदा हो गया, कोई कहता है कि मैं मुकद्दमा जीत गया। अब ऐसा करो कि हमको भी बीस हजार रुपये मिल जायें तो हमारा तुम्हारा बुढ़ापा आराम से कट जाय। श्री महाराज जी ने फरमाया कि तुमको नहीं मिल सकते क्योंकि तुम मांगना नहीं जानती। तो हमारी गुरुमाता ने कहा कि मांगना ही सिखा दो, तब श्री हजूर ने फरमाया कि तुम मांगना भी नहीं सीख सकतीं। तब हमारी गुरुमाता ने झुंझला कर कहा कि क्या आप दुनियां को बहकाते फिरते हैं ? हम तो जब जानें कि आप हमें बीस हजार रुपये दिलवायें। तब श्री हजूर ने फरमाया कि नाराज होने की तो कोई बात नहीं, दरअसल बात यह है कि जिस श्रद्धा व विश्वास के साथ वे सतसंगी लोग मुझसे मांगते हैं और मांगी हुई चीज़ पा जाते हैं, वह श्रद्धा और विश्वास तुममें आ ही नहीं सकता क्योंकि तुम ज्यादा से ज्यादा मुझे अपना पति समझती हो, जबकि वे लोग मुझको पूर्ण पुरुष, कोई अनामी पुरुष का अवतार मानकर

मांगते हैं और अपनी श्रद्धा व विश्वास के अनुसार उनको फल मिल जाता है ।

विश्वासं फल दायकम् ।

तो योग्यता क्या निकली ? श्रद्धा व विश्वास का अपने अंदर पैदा होना । अब रही अधिकार की बात, तो उसके लिये पढ़ो :—

खुशी से रहना है गर तुझको, पहले अधिकारी बन जा ।
अधिकारी वह नहीं खुशी का, जो पूरण शरणागत ना ॥
शरणागत हां, शरणगत, बस पूरण शरणागत बन जा ।
खुशी न चूमें पांव तेरे तो, जिम्मेदार हमें ठहरा ॥

पर हमतो एक माला चढ़ा आये या चार आने का प्रसाद चढ़ा आये या दस रुपये मानवता मन्दिर को दे दिये और हम समझने लगते हैं कि हम पूर्ण शरणागत हो गये । यह सब बातें तो शरणागत होने के लिये अधूरी हैं । शरणागत होने के लिये अभ्यास करना है । असली शरणागत वह है जो नीचे लिखी कसौटी पर खरा उतरे :—

शरणागत जब हुआ किसी का, तुमको बन्दे चिन्ता क्या ।
जब तक हिय में चिन्ता व्यापे, धोखा है, शरणागत ना ॥

तात्पर्य क्या निकला कि श्रद्धा व इस विश्वास

के साथ कि हमारा इष्ट पूर्ण पुरुष और पूर्ण धनी है और हमारी हर तरह की वासनाओं को पूर्ण करने वाला है, इस तरह शरणागत होकर मांगो और जो मांगोगे, वह मिलेगा। मैंने मांगा और मुझे मिला और हर सतसंगी को मिला।

पुष्प नं० २८

मौज से होता सारा काम

श्री हजूर दाता दयाल की वाणी है कि :—

मौज से होगा सारा काम।
तू क्या सोचे क्या मन ठाने ॥
सोच समझ ले मौज से होगा सारा काम।
मौज मौज सब कोई कहे, मौज न चीन्हें कोई।
प्रकृति के जो नियम हैं, मौज कहावत सोई ॥

प्रकृति के नियम को अंग्रेज़ी में लॉ आफ नेचर कहते हैं और उर्दू में इसको कानूने कुदरत कहते हैं। कानूने कुदरत क्या है? संतों ने थोड़े शब्दों में इसकी इस प्रकार व्यख्या की है :—

जैसी करनी वैसी भरनी, जैसा ख्याल वैसा हाल।
जैसी रहनी वैसी सहनी, जैसा अन्न वैसा मन्न॥
जैसी मति वैसी गति।

विश्व की जो रचना हो रही है या विश्व में जो कुछ हो रहा है वह सब कानूने कुदरत के अनुसार हो रहा है, प्रकृति या कुदरत शास्त्रों के अनुसार चार प्रकार की है—यानि स्थूल, सूक्ष्म, कारण और महाकारण। आदि काल से जब से मनुष्य इस सृष्टि में आया वह स्थूल प्रकृति के नियमों को जानने की कोशिश करता रहा है और जरूरत के अनुसार कभी कम तो कभी ज्यादा। लेकिन इसकी बुद्धि स्थूल पदार्थों तक ही सीमित रही है, यानि वह स्थूल पदार्थों के स्वाभाविक गुणों को जानने तक रही है और इस जानने का नाम साइन्स या विज्ञान रखा हुआ है। साइन्सदानों ने इस स्थूल प्रकृति के पदार्थों के स्वाभाविक (रसायनिक व भौतिक) गुणों को जानकर स्थूल जगत में नाना प्रकार की तब्दीलियां की हैं और करते जारहे हैं

और इन तब्दीलियों का नाम हमने आविष्कार या विकास रखा हुआ है। पर अभी साइन्स अधूरी है और इसलिये इन सान्इसदानों को कानूने कुदरत का विद्यार्थी ही कहा जा सकता है, चाहे उन्होंने कितने ही चामत्कारिक आविष्कार क्यों न किये हों जैसे हवाई जहाज़ बना लेना, ऐटम बम बना लेना, चन्द्रमा तक पहुंच जाना इत्यादि इत्यादि। पहले कहा जाता था कि साइन्स मनुष्य के फायदे के लिये बनाई है परन्तु अब वह मनुष्य के विनाश करने तक पहुंच गई है। लेकिन सूक्ष्म प्रकृति व कारण और महाकारण प्रकृति के नियमों व कानूनों को ये साइन्सदान न अभी तक जान पाये हैं और न कभी जान पायेंगे। इस कानून को केवल वही महापुरुष जान सकते हैं जो अपनी सुरत को अन्तर्मुखी करके मन के राज्य, आत्मा के राज्य तथा शब्द ब्रह्म और अनामी धाम तक पहुंचा सकते हैं, और ऐसे ही समर्थ महापुरुष संत या परम संत कहलाते हैं। यानि वे कानूने कुदरत के मास्टर या अनुभवी पुरुष कहलाते हैं।

और वे समर्थ होते हैं, सूक्ष्म प्रकृति, कारण प्रकृति और महाकारण प्रकृति में तब्दीली लाने के लिए ठीक ऐसे ही जैसे कि एक साइन्स दां या स्थूल प्रकृति का ज्ञानी स्थूल प्रकृति में तब्दीलियां ला सकता है। यानि वह अनुभवी समर्थ पुरुष हमारे मन, आत्मा व सुरत के अहसासात (बोधमान) को बदल सकता है। सारांश यह है कि जिस मनुष्य को अपने मन, आत्मा और सुरत में बदलाव लाना अथवा सुधार करना हो तो उसको ऐसे समर्थ पूर्ण और वीतराग पुरुष को सतगुरु धारण करना चाहिए परन्तु केवल सतगुरु (इष्ट) धारण करने से ही कोई विशेष सुधार नहीं हो सकता। सुधार तभी हो सकता है जबकि हमारी प्रकृति, स्थिति और परिथितियों को देखकर जो सतगुरु आदेश दे, उसको पूरा पूरा अमल में लाने, साथ ही अचिन्त रहने का प्रयास हो, अचिन्त भी वही रह सकता है जो कानूने कुदरत को पूरी तरह समझ ले और समझ कर यह धारणा बना ले कि "मौज से जो होना होगा, होगा अपने आप से काम कुछ चलता नहीं चिन्ता की तोल और नाप से।"

अचिन्तपना ही संतपना अथवा निर्वाण पद है जैसा कि संतों ने कहा है कि :—

मौज के आधीन जब मन, कर्म और बानी हुई।
काल का भय मिट गया, और सुरत निर्वानी हुई।

मौज के मानी कर्तव्य त्यागना नहीं अपितु उसके फल में आसक्ति न रखना है।

कर्म तो तेरे बस में भाई।
फल में तेरा हाथ है क्या॥
तेरे बस की बात नहीं।
तू उसकी क्यों करता परवा॥

उदाहरण :—एक किसान अपनी जमीन को अच्छीतरह तैयार करके बढ़िया और चुनीदा गेहूं का बीज बोता है और फसल के उग आने पर न तो समय पर काफी पानी देता है और न काफी खाद और फसल को मौज के ऊपर छोड़ देता है। जबकि दूसरा किसान इसी तरह उगाई हुई फसल को समय पर काफी खाद व पानी देता है और फिर मौज के ऊपर छोड़ देता है। अब सोचिये कि पहले किसान को इस मौज या कानूने कुदरत के अनुसार जैसी करनी वैसी भरनी के अनुसार क्या मिलेगा ? फसल तो खत्म, अब उसे मिलेगा ज़मीन की तैयारी का

खर्चा व बीज की कीमत व जमीन के लगान की रकम का दंड। और दूसरे किसान को अगर कोई दैविक दुर्घटना नहीं हुई तो पूरी पूरी फसल मिलेगी जिस से उसे व उसके परिवार के व दूसरे अन्य परिवारों के लोगों को सालभर तक का भोजन मिलेगा। किसी शायर ने कहा है कि :—

भरपेट गर लेना है तो, भरपेट फसलों को दे।
क्या खूब सौदा नकद है, इस हाथ दे उस हाथ ले।

रामायण में भी चौपाई है कि :—

कर्म प्रधान विश्व कर राखा, जो जस कीन सो तस फल चाखा।
सकल पदार्थ हैं जग मांही, कर्म हीन नर पावत नाहीं।

पुष्प नं० २९

साधन के लिये उपयुक्त समय, जगह, आसन, भोजन तथा तरीके :

१. समय :—साधन के लिये उपयुक्त समय ब्रह्म मुहूर्त अथवा तीन बजे रात से छः बजे सुबह तक का सबसे उत्तम रहता है, क्योंकि उस वक्त

आस पास के रहने वाले लोग भी सोये हुये होते हैं और वायुमण्डल में भी शान्ति का वातावरण रहता है और साधक का मन व आत्मा भी तरोताजा होती है और उस समय साधन में खूब तबीयत लगती है। न आस पास कोई बोलने व डोलने वाला होता है। साधक को मेरे अनुभव के अनुसार शुरु-शुरु में कुछ दिन आध घंटे तक सुमिरन नित्य नियम से पुष्प नं० ५ में बताये हुये तरीके से करना चाहिये। थोड़े दिनों में सुरत दोनों भौहों के बीच में तीसरे तिल पर आकर जम जायेगा जिसकी पहचान यह है कि काले तिल पर कुछ भारापन आयेगा और जब तक यह भारापन न आये इसी अभ्यास को करते रहना चाहिये। इस अभ्यास से धारणाशक्ति बढ़ जाती है जिससे अगले अभ्यास ध्यान में बहुत मदद मिलती है। वैसे तो सुमिरन चलते फिरते, काम करते हुये भी किया जा सकता है। जब तीसरे तिल पर सुरत जमने लगे तो पुष्प नं० ५ में बताये हुये तरीके से गुरु मूर्ति के ध्यान का अभ्यास करना चाहिये। इस अभ्यास से जब गुरु मूर्ति अन्दर त्रिकुटी पर प्रगट होने लगे तब तक 10 मिनट सुमिरन व

20 मिनट ध्यान का अभ्यास जारी रखना चाहिये, जब तक गुरु मूर्ति त्रिकुटी में अच्छी तरह प्रगट न हो जाय। शब्द सुनने व प्रकाश देखने की कोशिश न की जाय नहीं तो अभ्यास में विघ्न पड़ते रहेंगे। एक बात यह भी याद रखनी चाहिये कि जिन्दा गुरु की मूर्ति कुछ देर में ही बैठती है जबकि बीते हुये गुरु की मूर्ति जल्दी व आसानी से बैठ जाती है। इस तरह जब मूर्ति प्रगट होने लगे तो आगे बताये हुये तरीके से पहले शब्द सुनने का अभ्यास किया जाय। यहां यह भी सवाल हो सकता है कि शब्द के अभ्यास का पूरा कोर्स कितने दिनों में पूरा हो जाता है, इसके लिये कुछ संतों ने ऐसा कहा है कि अगर यह अभ्यास पूरी लगन से ठीक समय व ठीक तरीके से किया जाय तो यह कोर्स छः महीने में पूरा हो सकता है। सम्भव है यह किसी को होगया हो। परन्तु मैंने चूंकि यह अभ्यास गृहस्थ में रहते हुये किया है और अभ्यास के साथ-साथ गृहस्थ व संसार की जिम्मेदारियां निभाते हुये किया है, इसलिये मुझे तो इस कोर्स को पूरा करने में ठीक 20 साल लगे। इसलिये मैं उन गृहस्थी भाईयों को जो गृहस्थ

में रहकर साधन कर रहे हैं या करना चाहते हैं उनको सब्र व धीरज से काम लेने की सलाह दूंगा और उन्हें यथा सम्भव मुकर्रर समय पर अभ्यास लगन और विश्वास के साथ कर रहना चाहिये। गुरु कृपा से यह कोर्स पूरा करने में चाहे देर लगे पर पूरा जरूर हो जाता है, यह मेरा निजी अनुभव है। साथ ही यह भी अनुभव है कि गृहस्थ में रहते हुये कभी-कभी संसारी कामों में लगे रहने के कारण कभी-कभी समय नहीं मिल पाता तो फिर जब समय मिले अभ्यास करते रहना चाहिये। अर्थात् यह सिलसिला जारी रहे।

२. जगह :—साधन करने के लिए सबसे उत्तम जगह वह हो सकती है जहां एकान्त हो परन्तु इस जमाने में आबादी बढ़ते जाने के कारण खास कर शहरों में और कहीं कहीं और कभी कभी गांवों में ऐसी जगहों का मिलना असम्भव नहीं तो कठिन जरूर होता है। ऐसी सूरत में तो साधन ब्रह्म मुहूर्त में ही करना ठीक होता है क्योंकि उस समय आस पास रहने वालों की हल चल व कोलाहल नहीं

होता। जगह जहां पर बैठ कर साधन किया जाए ऊंची नीची न हो अर्थात् हमवार हो।

३. आसन :—जमीन पर ऊन या डाब या टाट का कपड़ा बिछाकर बैठना चाहिए। सुमिरन ध्यान तो पलाथी मारकर बैठकर किया जा सकता है परन्तु शब्द सुनने व प्रकाश देखने के लिये सुभीते के अनुसार ऐसा आसन लगाना चाहिये जैसा कि आगे दिये हुये तरीके के बयान में चित्रों द्वारा समझाया गया है। साधन करने से पहले शरीर की ज़रूरियात जैसे टट्टी, पेशाब से फारिग होकर और यदि मौसम व तन्दरुस्ती इजाजत दे तो स्नानोपरान्त बैठना चाहिये और अगर ऐसा न हो सके तो अच्छी तरह हाथ मुंह धोकर आलस को छोड़ कर साधन करना चाहिये।

४. साधन करने का तरीका :—सबसे पहले सुमिरन व ध्यान का साधन करना चाहिये और इस साधन के पूरा होने पर शब्द सुनने व प्रकाश देखने के लिए या तो आसन, जैसा कि आगे के चित्र में दिया है, लगाना चाहिये, साथ ही मौसम के अनुसार भारी या हल्का कपड़ा लेकर शरीर को

ढाप कर साधन करना चाहिए ताकि तुम्हारी रैडीऐशन (धार) बाहर न जाय। परन्तु यह आसन हल्के बदन वाले ही लगा सकते हैं और फिर भी उनको बवासीर के मर्ज की शिकायत हो सकती है। क्योंकि इस आसन के लगाने पर गुदा पर जोर पड़ता है। भारी जिस्म वालों को या भारी पेट वालों को वैरागिनी (आसा) का सहारा लेकर पार्श्वथी मारकर बैठना चाहिए, जैसा कि आगे दिये हुए चित्र में दिया गया है। वैरागिनी या आसा अपनी ऊंचाई के अनुसार एक लकड़ी या बांस के डंडे में एक 2 फुट से 2 फुट 6 इन्च लम्बा और 3 से 4 इन्च चौड़ा तख्ता जड़ देने से नीचे लिखी शक्ल की बन जाती है। इसको थोड़ी लागत से मामूली मिस्त्री बना सकता है।

तात्पर्य यह है कि आसन ऐसा लगाना चाहिये कि रीढ़ की हड्डी अथवा मेरूदण्ड सीधा रहे और हाथ झूलते हुए न रहें नहीं तो उनमें तनाव आने पर कुछ दर्द सा महसूस होता है और सुरत शब्द व प्रकाश से हटकर उस दर्द की ओर खिंच जाती है, साथ ही आंख, कान व मुंह बंद होने चाहियें :—

चित्र कुकुट आसन

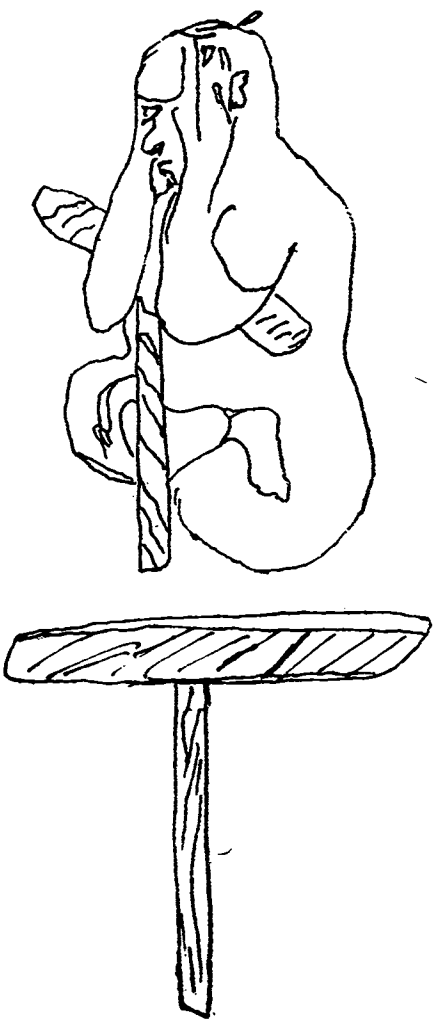

नाक, कान, मुंह बंद कर, नाम निरंजन ले।
अन्दर के पट जब खुलें, जब बांहर के पट दे।

आँख और मुंह तो स्वाभाविक तरीके से बंद हो जाते हैं और कानों को बंद करने के लिए हाथ के अंगूठे इस्तेमाल करने चाहियें, पर अंगूठों को ज्यादा नहीं दवाना चाहिये कि कान में भुन्न भुन्न की आवाज होने लगे कान इसलिए बंद कराये जाते हैं कि बा र के शब्द न सुनाई दें। बहुत से लोग आंखों को उंगलियों से दवाकर प्रकाश देखने की कोशिश करते हैं और प्रकाश अंदर दिखाई भी दे जाता है क्योंकि आंखों में बिजली की शक्ति होती है और आंख दवाने से वह प्रकाश दिखाई दे जाता है परन्तु यह वह प्रकाश नहीं होता जो अन्दर सोपानों पर दिखाई देता है। और न यह ज्यादा देर तक ठहरने वाला ही होता है बल्कि आंखों में खराबी पैदा करने वाला होता है। जब ध्यान करते करते त्रिकुटी पर मूर्ति जम जाती है तो अपने गुरु या आचार्य से पहले शब्द सुनने का तरीका पूछ कर शब्द सुनने का अभ्यास करना चाहिये। अगर गुरु या आचार्य दूर रहते हों तो नीचे के तरीके से अभ्यास

शुरु करना चाहिये कि पहले ५ मिन्ट सुमिरन किया जाए फिर त्रिकुटी पर कुछ देर मूर्ति का ध्यान किया जाय जब मूर्ति प्रगट हो जाय तो ऊपर लिखे तरीके से कान बंद कर सीधे कान की तरफ सुरत (तवज्जह) लगाई जाय।

थोड़े दिन इस तरीके से अभ्यास करने पर पहले सीधे कान में सुबह को चहकती हुई चिड़ियों की आवाज सुनाई देगी उसको पूरे गौर से सुनते रहना चाहिये, इसे सुनते सुनते चिड़ियों की आवाज बरसात के दिनों में बोलते हुये झींगुर की आवाज़ में बदल जायेगी। अब इस आवाज की तरफ पूरी सुरत दी जाय। इस तरह अभ्यास करते करते अपनी लगन के अनुसार यह झींगुर की आवाज घड़ावल की आवाज यानि टन टन में बदल जायेगी और इस टन टन की आवाज के साथ कभी कभी शंख ध्वनि भी सुनाई देगी, यह आवाज सहस दल कंवल की है और पूरी लगन व सुरत के साथ इसको सुनते रहने पर स्वयं ही अगले सोपान वाली त्रिकुटी का शब्द जो कि पखावज या मृदंग का है अपने आप सुनाई देने लगता है यह शब्द बादल की हल्की गर्जन से भी

मिलता जुलता है। इससे आगे लगन व सुरत से मृदंग का शब्द सुनते सुनते वह सारंगी का जैसा शब्द यानि सारंग रारंग अपने आप सुनाई देने लगता है और इसी तरह सुनते सुनते गुरु दया से एक के बाद दूसरी सोपान के शब्द सुनाई देने लगेंगे। एक बात याद रखनी है कि सुमिरन ध्यान और शब्द सुनने का अभ्यास तीनों एक साथ नहीं होने चाहियें क्योंकि सुरत एक समय पर एक ही जगह रह सकती है। साथ ही अगर शरीर के अंगों की निर्बलता के कारण या अंग हीनता के कारण दोनों में से कोई आसन न लगाया जा सके तो फिर साधक कोई सहारा लगाकर बैठकर या लेटकर भी अभ्यास को कर सकता है लेकिन आसन लगाकर अभ्यास करने में जल्दी सफलता मिलती है और बिना आसन लगाये अभ्यास करने में देर में सफलता मिलती है। अगर किसी कारणवश वैरागिनी या आसा न मिल सके तो कम ऊंची चारपाई की पाटी व खटोला, पीढ़ा का सहारा लिया जा सकता है। अगर ये भी न मिल सके तो पालथी मारकर बैठकर जांघों पर दो तकिये रखकर बाँहों को साधा जा

सकता है। किसी किसी को पहले शब्द या किसी किसी को पहले प्रकाश दिखाई देता है और किसी को दोनों मुझे उस समय के गुरु की आज्ञानुसार सुमिरन और ध्यान पूरा पक जाने पर वैरागिनी वाला आसन लगाकर दांये कान में चिड़ियों का चहचहाना सुनाई दिया, उसको सुनते सुनते झींगुर के बोलने का शब्द सुनाई दिया और फिर घंटा, शंख की आवाजें सुनाई दीं, जिनके सुनने में बड़ी तबीयत लगती थी और घंटा को सुनते रहने से अपने आप मृदंग की आवाज में बदल गया। यहां तक तो मैं आसानी से पहुंच गया परन्तु आगे का सारंग रारंग शब्द बहुत समय तक मेहनत करने पर भी पूरी तरह सुनाई नहीं देता था तो मैंने उस समय के गुरु महाराज से अर्ज की कि मुझे आगे बढ़ावें। उन्होंने कहा, अब तुम सन्यासी हो जाओ। यह बात उनकी मुझे अच्छी नहीं जची, क्योंकि उस समय मेरे दो लड़के व लड़कीयां बनारस विश्वविद्यालय में शिक्षा पा रहे थे व कंवारे थे। बस इसी बात पर हमारे व गुरु महाराज जी के सम्बन्ध विच्छेद हो गये। गुरु जी से तो सम्बन्ध बिच्छेद हो गया परन्तु शब्द जो

सुनाई देते थे, उनसे सम्बन्ध बना रहा। कई साल तक इस तरह बिना गुरु के चलता रहा तब मुझे एक अपने मित्र द्वारा श्री हजूर दाता दयाल जी की लिखी एक पुस्तक पढ़ने को मिली, जिसमें लिखा था कि शब्द के साथ प्रकाश का होना भी जरूरी है क्योंकि प्रकाश प्रगट होने पर सुरत को दूसरे सोपान तक पहुंचने में बड़ी सहायता मिलती है क्योंकि आवाज से प्रकाश की गति या चाल अधिक होती है। (लाइट इज फास्टर दैन साउन्ड) साथ ही यह भी लिखा था कि अगर किसी को शब्द ही शब्द सुनाई देते हों तो प्रकाश को प्रगट करने का आसान तरीका यह है कि साधक अपनी दोनों भौंहों के बीच हल्दी, केसर या पीले रग की पेवरों से अंगुली के पोटुवे से एक तिलक लगाले और सूख जाने पर अपने सामने एक साफ किया हुआ आईना या दर्पण रखले और उसमें जो अपना चेहरा व उस पर लगा हुआ टीका दिखाई दे तो उस टीके की ओर घूरता रहे। यह अभ्यास दिन में 5 मिन्ट के लिये दो या तीन बार करता रहे। साथ ही एक लाल रंग के कमल के फूल का चित्र ऐसी जगह पर लटकादे कि उसे चलते फिरते या काम

करते हुये दिन में कई बार देखता रहे। कुछ दिनों में लगन के साथ अभ्यास करने पर कमल का फूल लाल रंग का अंदर माथे की पेशानी में प्रगट होगा और उसकी पंखड़ियां अंदर सारे माथे में फैली हुई नजर आयेंगी।

यह सहस दल कंवल यानि मन का स्थूल चित्र होता है, जब यह प्रगट हो जाय तो दर्पण वाला अभ्यास छोड़ देना चाहिये और सुमिरन का ध्यान करके साधन पर बैठने पर प्रकाश अपने आप दिखाई देने लगेगा। इसी को सहस दल कंवल का प्रकाश भी कहते हैं। इसकी लगन और पूरी तवज्जह के साथ देखते-देखते आगे त्रिकुटी का प्रकाश जो गहरे सुनेहरे रंग का होता है दिखाई देने लगेगा। अब साधन इस तरह का होना चाहिये कि जितना समय साधन को दिया जाय उसमें से आधा इस प्रकाश को देखने को दिया जाय और आधा समय उस शब्द को सुनने को दिया जाय जो आसानी से सुनाई देता हो। मैंने दर्पण वाला अभ्यास किया और सहस दल कंवल प्रगट हुआ और उसके बाद त्रिकुटी का सुनेहरी रंग का सूर्य या

(प्रकाश) भी चमका इसके बाद में दोनों अभ्यासों को करता रहा और क्रमानुसार आगे सारंगी यानि सुन्न का शब्द सुनाई दिया, साथ ही सुन्न के स्थान का प्रकाश जो पूर्णिमा की चांदनी जैसा कुछ नीलापन लिये हुये दिखाई देने लगा और इसी तरह से शब्द व प्रकाश का अभ्यास करते-करते मुझे सचखण्ड यानि सतलोक का शब्द यानि सत सत की वीणा सुनाई देने लगी और वहां का महाप्रकाश भी दिखाई देने लगा।

इससे आगे के अभ्यास के लिये इसी पुस्तक में श्री हजूर दाता दयाल जी ने लिखा था कि सतलोक में सुरत के पहुंच जाने के बाद सतगुरु से आमने सामने बैठकर आगे का तरीका पूछो, वह तुमको सैन बैन से बतायेगा। अब मुझे यह दिक्कत आई कि मेरा गुरु तो कोई रहा नहीं, मैं किसके सामने जाऊं, इसके बाद मेरे साथ क्या बीती वह अगले पुष्प में बयान की जावेगी।

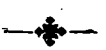

पुष्प नं० ३०

क्या जिन्दगी में एक ही गुरु धारण करना चाहिये या अनेक।

दूसरे साधकों के बारे में इस बाबत मैं कुछ कह नहीं सकता, पर मुझे जो थोड़ी बहुत सफलता सुरत शब्द योग में मिली है, उसके लिये स्थिति और परिस्थितयों के अनुसार तीन गुरुओं का सहारा लेना पड़ा, वह क्यों और कैसे ? इसलिये कि बचपन से ही मेरे दिल में यह प्रेरणा न जाने क्यों उठती रहती थी कि मोक्ष क्या है ? और कैसे मिलती है ? और इस प्रेरणा के अन्तर्गत मुझे कई मतों की बहुत सी पुस्तकें पढ़नी पड़ीं और उनमें मोक्ष प्राप्ति के बताये हुये साधन भी किये और साधनों में असफल रहा। सौभाग्य से श्रीमान् महाराज महामना मालवीय जी ने मुझे अनुसंधान विद्यालय, बनारस हिन्दु विश्व-विद्यालय में काम करने के लिये बारह वर्ष के लिये बुलाया। उस समय मेरी उमर लगभग 42 साल की थी और मेरी स्वाध्याय की पुस्तक थी तिलक महाराज जी का गीता रहस्य और ध्येय बन चुका

था कर्म योग का आचरण करना, और अभ्यास यह था ॐ का त्रिकुटी में ध्यान करना। यह मैं क्यों करता था ? इसलिये कि कर्तव्य निर्णय करते समय कभी दो धर्म या दो अधर्म का मुकाबला करना पड़ता था। जैसे कि वीर अर्जुन को रण भूमि में करना पड़ा और उसी के कारण श्रीमद् भागवत गीता का प्राकट्य हुआ। गीता रहस्य में लोकमान्य तिलक ने इस कर्तव्य निर्णय की चर्चा करते हुये बताया है कि वही पुरुष ठीक निर्णय कर सकता है जिसको सद विवेक बुद्धि प्राप्त हो और यह भी बताया कि इस सद बुद्धि को प्राप्त करने के लिये ॐ का त्रिकुटी पर ध्यान करना परम आवश्यक है अतः मैं उस समय ॐ का त्रिकुटी पर ध्यान करने का अभ्यास करता था किन्तु अभ्यास करने के बाद दुखी होता था कि आधा घंटा मैंने जो अभ्यास किया उसमें से मुश्किल से ५ मिनट त्रिकुटी में ध्यान जमा हो, नहीं तो २५ मिनट चंचल मन न जाने कहां घसीटता फिरा। इसलिये मेरा अब ध्येय बन गया था कि इस मन की चंचलता को किसी तरह दूर किया जाय कि ध्यान का साधन बन सके।

इसी बीच बनारस में सन् 1933 में एक संन्यासी महात्मा जी आस पास के नगरों व गांवों में प्रतिष्टित थे और बहुत से लोगों यहां तक कि मेरे असिस्टैन्ट के भी गुरू थे, दर्शन करने का अवसर मिला। उन्होंने मुझे देखते ही मुझसे कहा कि आप तो गीता के प्रेमी मालूम होते हैं। मैंने कहा प्रेमी तो नहीं गीता का गधा जरूर हूं, वे बहुत हंसे और कहने लगे कि आप ऐसा क्यों कहते हैं, मैंने कहा महाराज हिन्दी, उर्दू और अंग्रेजी ज़बान में जितने आज तक मुझे गीता के टीका मिले हैं, सबको प्रेम से पढ़ा है, और अब लोकमान्य तिलक की गीता का स्वाध्याय करता हूं अर्थात् गीता का ज्ञान मेरे ऊपर लदा हुआ है, पर उसके अनुसार आचरण नहीं हो पाता। इसलिये मैं अपने आप को गीता का गधा समझता हूं। आचरण न होने का कारण यह है कि मेरा मन अधिक चंचल है। अगर दो लफ्ज़ों में कोई ऐसी युक्ति बताने की कृपा करें जिससे मन बस में आजाय तो आपको गुरु धारण करलूं। उन्होंने पहले तो एक वाणी शायद यही पढ़ी कि :—

बिना शब्द मन बस नहीं, तू होजा ध्यानी शब्द का।

और फिर कहा कि अपना सीधा कान मुझे दीजिये। फिर उन्होंने मेरे सीधे कान में फूंक मारते हुये कई बार गुरु गुरु शब्द का उच्चारण किया, और आदेश दिया कि इस गुरु शब्द का स्वाँसों में उच्चारण करते रहो और फिर वैरागिन वाला आसन लगा करके सीधे कान की तरफ पूरी तरह तवज्जह या सुरत लगाया करो। पहले चिड़ियों की चह चहाहट सुनाई देगी, फिर झींगुर का शब्द सुनाई देगा और उस शब्द में जितनी ज्यादह सुरत लगाओगे उतनी ही जल्दी घंटा का शब्द सुनाई देने लगेगा। पहले तो मुझे इसपर इसलिये यकीन नहीं हुआ कि मैं आर्य समाजी विचार का था, परन्तु जब अभ्यास करते करते घंटा का शब्द सुनाई देने लगा, तब मुझे पूरा यकीन हो गया कि अंतर में शब्द अवश्य सुनाई देते हैं और फिर यह अभ्यास करते करते त्रिकुटी के मृदंग शब्द को भी सुनने लगा और उसी सूरत में कभी कभी सुन्न का शब्द रारंग सारंग शब्द भी प्रगट हो जाता था और इन शब्दों के प्रगट होने में मुझे ३, ४ साल लग गये और फिर मैंने इन शब्दों के प्रगट होने के उपरान्त उन संन्यासी गुरू महोदय

को आगे के शब्द सुनने के लिये मदद करने की दरखास्त की तो उन्होंने संन्यास धारण करने का उपदेश दिया। परन्तु मैंने अपनी गृहस्थ की स्थिति को देखते हुये संन्यास लेने से इन्कार कर दिया और एक तरह से गुरु महाराज से सम्बन्ध विच्छेद हो गया। परन्तु शब्द सुनने का अभ्यास जारी रक्खा और ५, ६ साल के अर्से में मुश्किल से सुन्न के शब्द दृढ़ कर पाया। सन् 1942 में हिन्दू विश्व विद्यालय, बनारस से अवकाश प्राप्त कर घर आया तो मुझे पता लगा कि राधास्वामी मत वाले भी इस सुरत-शब्द-योग के अभ्यास को करते और कराते हैं तो मैं अपने एक मित्र जो राधास्वामी मत को मानने वाले थे, से मिला तो उन्होंने मुझे एक पुस्तक नैयरे अनवर नाम की दी, जिसे पढ़ कर मेरा विश्वास दृढ़ हो गया कि राधास्वामी मत में सुरत शब्द योग पर ही विशेष ध्यान दिया जाता है। फिर उन्होंने और पुस्तकें दीं जिन्हें पढ़कर मेरी वह घृणा दूर हुई जो कि बचपन में ही एक पंडित ने राधा-स्वामी मत की बुराई करके मेरे अंदर पैदा करदी थी। सन् 1945 में जब मैं पालमपुर स्टेट में कृषी के

डाइरैक्टर के औहदे पर तैनात किया गया तो उन्हीं मित्र ने एक बहुत मोटी पुस्तक दी जो हजूर दाता दयाल ने उर्दू जुबान में लिखी थी और उसका नाम अद्भुत उपासना योग रक्खा था। इस पुस्तक को मैंने पालमपुर उत्तरी गुजरात में रहते हुए कई बार पढ़ा तो यह सारांश निकला कि सुरत शब्द योग में सफलता पाने के लिये तीन आधार बनाना जरूरी है यानी सतगुरू, सतसंग और सतनाम तथा तीन अभ्यास करना जरूरी है यानी सुमिरन, ध्यान और भजन। अब मैं संकट में पड़ गया कि गुरु किसको धारण करूं। इत्तफाक से उस पुस्तक में श्री हजूर दातादयाल जी का एक फोटो भी रक्खा था और मैं उस फोटो को ही गुरू मानकर श्री हजूर दाता दयाल जी का ही ध्यान करता रहा और उस ध्यान की बदौलत मैं सतलोक (सचखंड) के शब्द सत सत वीणा को सुनने लगा और वहां के महाप्रकाश को देखने लगा। उसी पुस्तक में यह भी लिखा था कि सतलोक से आगे अलख, अगम और अकह लोक हैं जिन तक पहुंचने के लिये गुरु के सामने बैठकर गुरु से सैन बैन द्वारा वहां का हाल जाना जा सकता है। अब मेरे सामने

फिर संकट पैदा हो गया क्यों कि श्री हजूर दाता दयाल जी उस समय तक चोला छोड़ चुके थे और यह संकट सन् 1950 तक बना रहा, जब तक कि मैं पालमपुर से अवकाश प्राप्त कर घर लौटा। घर लौटने पर मैं फिर उन्हीं अपने मित्र से मिला और कहा कि भाई अब मुझे एक ऐसे गुरू की जरूरत है कि जो सुरत शब्द योग का अभ्यास करते करते श्री हजूर दाता दयाल जी की योग्यता को प्राप्त कर चुका हो। उन्होंने दो नाम तजवीज किये एक तो श्री हजूर पं० फकीरचन्द जो, होशियारपुर (पंजाब) वाले तथा दूसरे श्री हजूर नंदूभाई, हैदराबाद (दक्षिण) के रहने वालों का, और उन्ही मित्र ने एक फोटो श्री हजूर पं० फकीरचन्द जी महाराज का भी दिया और तभी से मैं उनको अपना गुरू मानने लगा और उन की मूर्ति का ध्यान करने लगा। मैंने एक बहुत लम्बा चौड़ा खत लिखा, इसमें अपनी जिन्दगी के उस दिन तक के हालात लिखे और साथ ही यह भी लिखा कि मैंने आपको गुरू धारण कर लिया है और आपकी फोटो का ध्यान करता रहता हूं, साथ ही यह भी लिखा कि मैं सुरत शब्द योग का अभ्यास करते करते

सतलोक तक पहुंच गया हूं। दया कर लिखें कि अब क्या अभ्यास करूं कि आगे की सोपानों यानी अलख, अगम व अकह तक पहुंच सकूं। इतने बड़े खत का उन्होंने कुछ लाइनों में कुछ इस तरह तहरीर फरमाया कि :—

१. अगर आपको बेफिक्री हासिल है तो आगे कुछ नहीं करना धरना क्यों कि अचिन्तपना ही संतपना है।

२. अभ्यास महज औजार है, मंजिले मकसूद नहीं।

३. मैं फलां तारीख को दिल्ली आ रहा हूं जरूरत समझो तो मिलो।

मैं उस मुकर्रर तारीख पर दिल्ली पहुंचा और पता लग कि प्रोग्राम कैन्सिल हो गया है। मैं बहुत ही निराश हाकर घर आया और फिर दूसरा खत लिखा कि मैं देहली तारीख मुकर्रर पर गया था परन्तु श्री हजूर तशरीफ नहीं लाये। अब मेहरबानी फरमा कर इजाजत दें कि मैं होशियारपुर आकर ही दर्शन करूं और कुछ थोड़ा सा टाइम मेरे लिये

निकालें कि मेरे सवालों का जवाब मुझे मिल सके। जवाब आया कि मैं मजदूरी करके दिन काट रहा हू। सुबह सात बजे जाता हूं और शाम को साढ़े सात बजे लौटकर आता हूं, मैं कोई टाइम नहीं निकाल सकता और न मेरे पास कोई माकूल जगह तुम्हें ठहराने और न मेरे पास कुछ तुम्हें खिलाने को है ? इसके जवाब मैं मैंने खत लिखा कि मुझे श्री हजूर के दर्शनों की उत्कट अभिलाषा है, मैं होशियारपुर आकर किसी होटल में ठहर जाऊंगा। आप मुझे सिर्फ आधा घंटा दर्शन करने के लिये और एक सवाल का जवाब पाने के लिये अता फरमायें तो मैं बहुत ही आभारी रहूंगा। जवाब मिला कि तुम होशियारपुर आने का कष्ट न करो तारीख फलां से एक हफ्ते तक सुबह ५-३० बजे मेरा ध्यान करते हुये वहां से ही सवाल किया करो। रेडियो असूल के मुताबिक एक घंटे में तुम्हें जवाब मिल जाया करेगा। मुझे बड़ी खुशी हुई कि यह चमत्कार देखने को मिलेगा और मैं तारीख मुकर्ररा पर ५-३० बजे सुबह बैठ गया और ध्यान करके यही सवाल पूछा कि सतलोक से आगे क्या अभ्यास करना है ? उसका जवाब मुझे

होशियारपुर से लगभग ४०० मील दूर पर आया और उस सवाल व जवाब को मैंने कागज पर नोट कर लिया और एक हफ्ते तक बराबर इसी तरह के सवाल करता रहा और जवाब आते रहे। एक हफ्ते बाद मैंने सब सवाल व जवाबों को लिखकर भेजा कि क्या यह ही सवाल जवाब थे? उत्तर मिला कि मैं तेरा जिम्मा लेता हूं जैसा तू चाहेगा बन जावेगा लेकिन तुम अभ्यास करते-करते जब तक अशब्द गति को न प्राप्त करलो, मुझ से मिलने कहीं न आना और न कोई खत लिखना, मैं उस वक्त तक गृहस्थ की जिम्मेदारीयों से एक काफी हद तक फारिग हो चुका था और काफी समय निकाल कर अभ्यास करता रहा, जिसका नतीजा यह हुआ कि एक साल के अन्दर मैं अभ्यास करते-करते ऐसी जगह पहुंच जाता था कि जहां मेझें न तन की सुध रहती न मन की, एक अजीब गहरी नींद की सी अवस्था बन जाती थी। मैंने फिर खत लिखा कि अभ्यास करते-करते मेरी यह हालत हो जाती है, क्या यही अशब्द गति है? जवाब मिला कि अब तुम होशिआरपुर आने के अधिकारी

हुए हो। मैं दूसरे ही दिन चलकर होशियारपुर पहुंचा और एक होटल में ठहर गया, और शाम को 7-30 बजे पता लगाते लगाते उनकी कोठी पहुंचा तो दरवाजे में घुसते ही वे चारपाई से उठे और यह कहते हुए कि तू मेरा सतगुरु है मेरे पैरों की तरफ लपके, मैंने उनकी दोनों बाँहें पकड़ कर धक्का देकर पलंग पर सिला दिया, बोले, अरे तुमने मुझे पटक मार दी, मैंने बेहूदा शब्दों में जबाब दिया कि आप हरकत ही ऐसी करते थे और हुकम दिया कि कुर्सी पर बैठो। कहने लगे कि मैंने तुमको सतगुरु क्यों कहा ? इसलिए कि मैं ब्रह्मण का लड़का हूं और मुझे मेरे गुरु दाता दयाल जी ने "सार वचन" यह कहते हुऐ दी थी कि इसको पढ़ा करो, मैं पढ़ता था और कभी कभी दुखी होता था क्यों कि उसमें कहीं कहीं खण्डन उन बातों का किया गया जिन बातों को बहुत अच्छी समझता था, इसलिये मैंने सारबचन की हर बात के अनुसार आचरण किया और जब उनको ठीक पाया तब मैंने संतमत को पूरी हरह स्वीकार किया। एक बाणी जो सारबचन की तो नहीं कबीर साहब की है कि :—

लाख कोस जो गुरु बसे, सुरत को देय पठाय।
शब्द तुरीय असवार हो, इस आवे उत जाय॥

इसको अजमाने के लिये दो व्यक्तियों की जरूरत थी। तुम्हारी खतो खिताबत से मैंने तुमको चुना और लिख दिया कि तुम वहां से सवाल किया करो मैं जवाब दूंगा और इस तरह हमारे तुम्हारे 400 मील दूर होने पर भी सवाल और जवाबों का आदान प्रदान हुआ तो मेरी गुत्थी सुलझ गई। तो बता तू मेरा सतगुरु या मैं तेरा सतगुरु ? साथ ही हिदायत की कि यह अशब्द गति जो तुमको आजाती है, यह अंतिम अवस्था है, इसमें ज्यादा देर तक ठहरने की कोशिश न किया करो, नहीं तो जिन्दगी जल्द खतम हो जावेगी जबकि तुमको अभी बहुत काम करना है। मैंने पूछा कि महाराज जी ! वह क्या काम करना है ? फरमाया कि फिर कभी बताऊंगा, और फिर मेरी कमर थपथपा के कहा कि जाओ मैंने तुमको टच देदिया है, मालिक दया करेगा। मैं बहुत कुछ शुकर गुजारी करके वापिस घर चला आया। कुछ महीने बाद शिवरात्री पर जब दयालधाम, अलीगढ़ में सतसंग हो रहा था मुझे आवाज लगाई,

मैं खड़ा हुआ तो हुक्म दिया कि कल से सतसंग कराया करो व नामदान दिया करो, यही काम है जो तुमको करना है। यह वाक्या 1953 का है, और जब से अब तक मैं यह सतसंग व नामदान देने का काम उत्तर प्रदेश, हरियाणा, पंजाब व राजस्थान में करता रहा हूं। आगे मौज, मौज, मौज। इस तरह मुझे जिन्दगी में तीन गुरु धारण करने पड़े। अब दूसरों के लिये मैं यही कह सकता हूं कि देश काल व पात्र के अनुसार व स्थति व परिस्थितियों के अनुसार अगर जरूरत आ पड़े तो दूसरा या तीसरा गुरु धारण करने में मैं तो कोई हर्ज समझता नहीं। साथ ही अगर कोई साधक पूरा साधन नहीं कर पाया है और इससे पहले ही गुरु ने चोला छोड़ दिया है तो उसे भी दूसरा गुरु साधन पूरा करने के लिये खोजना ही पड़ेगा।

पानी पीवे छान, गुरु करे पहचान।

गुरु की पहचान हमने पुष्प नं० ५ में पूरी तरह वताई है, परन्तु आजकल के जमाने में ऐसे गुरुओं का मिलना दुर्लभ हो गया है और साथ ही साथ दुर्लभ हो गया है ऐसे गुरुओं से बचना जो जगह-जगह अपने

स्वार्थ की सिद्धी के लिए अथवा सम्पत्ती बठोरने के लिये जगह-जगह मठ, मंदिर या गद्दी बनाये हुये बैठे हैं। लेकिन जिनको सच्चे ससगुरु को मिलने की उत्कट अभिलाषा होती है, उनको किसी न किसी तरह सच्चा सतगुरु मिल ही जाता है, यह भी मेरा निज अनुभव है।

पुष्प नं० ३१

संतमत सब मतों से निराला है व आला है।

"सन्तमत से तात्पर्य है, संतों की राय से! संत कबीरदास, सत गुरु नानकदेव तथा संत दयाल राधास्वामी की राय। पिछले पूष्पों में जो कुछ लिखा गया है, वह उन संतों की राय के आधार पर तथा कुछ साधन कर निज अनुभव के आधार पर है। पाठकगणों ने जिन्होंने पीछे दिये हुए पुष्पों को गौर से पढ़ कर समझने की कोशिश की होगी तो उनको यह प्रतीत हुआ होगा कि संतों की राय किसी दूसरे मत वालों

से शत–प्रतिशत मिलती जुलती नहीं अथवा उनकी शिक्षा निराली है तथा साधन भी निराले हैं और साधन करके जो सिद्धि प्राप्त होती है वह भी निराली है। अक्सर पाठकगण जिनमें से मैं कभी एक खुद भी था अपनी उन मालूमात से जो कि उनको अब तक दूसरे मत मतान्तरों की पुस्तकें पढ़कर हुई हैं उनसे इस मत की शिक्षा का मुकाबला करते हैं और इस लिये वह इस मुकाबले में ही पड़े रह जाते हैं। संत मत की शिक्षा का वही लोग सही सही ग्यान प्राप्त कर सकते हैं जो कि यह समझकर कि यह मत निराला है इसका अध्यन करते हैं। यह ग्यान जो बिश्वास के साथ केवल उनको होता है या हो सकता है जो कि इस मत के निराले साधनों को साधते हैं और कुछ अनुभव स्वयं प्राप्त करते हैं। जो लोग यह न समझकर कि संतों की तालीम व साधन व सिद्धि निराली है। संतों की शिक्षा का अध्यन करते हैं, वे बजाये इसके कि कुछ प्राप्त करें वे और चक्कर में पड़ जाते हैं, और को मैं क्या कहूं में खुद ४५ साल की उमर तक इस चक्कर में पढ़ा रहा, अब मेरी यह धारणा बन गई है, मुमकिन है यह गलत हो कि सुरत

शब्द योग के साधन में सब योगों का समावेष होता है जैसे के प्रेम योग, ग्यान योग, बिचार योग (वेदान्त योग) सांख्य योग तथा कर्म योग। एक सच्चा संत सच्चा कर्मयोगी होता है यह मेरी धारणा अब तक बनी हुई है, पर दावा नहीं कि यह मेरी धारणा ठीक है और इस धारणा के आधार पर में इस सन्तमत को सबसे आला व निराला मानता हूं।

पुष्प नं० ३२

कालमत व दयालमत

संसार में आजकल अनेकों मत मतान्तर प्रचिलित हैं, संतों ने उनको दो वर्गों में वांटा है।

(१) कालमत। (२) दयालमत।

१. कालमत :—जितने भी मत मतान्तर आज कल संसार में प्रचिलित हैं करीब करीब सबमें किसी में थोड़ा तो किसी में ज्यादा रूहानियत अथवा अध्यात्म ज्ञान की चर्चा पाई जाती है अध्यात्म ग्यान उस ग्यान को कहते हैं जिससे यह जानकारी

प्राप्त हो कि (1) मैं (2) यह, और (3) वह क्या हैं ? (1) मैं से तात्पर्य है, उस सुरत या जीव से जो इस मानस चोले में रहकर मैं मैं करती रहती है, वह 'मैं' वास्तव में शरीर नहीं, शरीर से कोई अलग वस्तु है अगर वह 'मैं' शरीर होती तो 'मैं' के साथ शरीर को भी चला जाना चाहिये था, पर ऐसा नहीं होता, हम खुद रात दिन इस 'मैं' को शरीर छोड़ते हुए देखते हैं, तो यह जानना जरूरी हो जाता है कि आखिर वह 'मैं' है क्या वस्तु ? (2) 'यह' से तात्पर्य है माया से, जिसमें हमारी 'मैं' इस शरीर को धारण करके आती जाती रहती है, खेलती कूदती है और नाना प्रकार के काम करती व दुख सुख उठाती है तो यह भी जानना जरूरी हो जाता है कि आखिर को यह माया है क्या वस्तु ?

(3) 'वह' से तात्पर्य है उस कुल मालिक से जो इस 'मैं' और 'यह' का आधार है जिसको कोई ईश्वर कोई खुदा और कोई दूसरे नाम से पुकारते हैं तो यह भी जानना जरूरी हो जाता है कि आखिर वह ईश्वर या खुदा है क्या वस्तु ? ऊपर बताये आध्यात्म ग्यान को लगभग सभी मत मतान्तरों

में चर्चा पाई जाती है पर यह चर्चा एक दूसरे से मेल नहीं खाती। कोई कहता है कि ईश्वर, प्रकृति (माया) और जीव तीनों अनादि हैं तो दूसरा कहता है कि ऐकोब्रह्म द्वितियो नास्ति अथवा जो कुछ है वह एक हो ब्रह्म हैं और जो कुछ यहां दिखाई सुनाई देता है, यह सब कुछ ब्रह्म की ही अवस्थायें हैं। एक कहता है कि हमारा मालिक सर्वव्यापक है तो दूसरा कहता है कि नहीं वह तो क्षीर सागर में रहता है तो तीसरा कहता है कि वह सातवें आसमान पर रहता है।

यह जीव बार बार जन्मता मरता रहता है तो दूसरा कहता है कि जीव का पुर्नजन्म नहीं होता। एक कहता है कि गंगा नहाने से सब पाप कट जाते हैं और कर्मकाण्ड और तीर्थ यात्रा से जन्म मरण के बन्धन कट जाते हैं तो दूसरा कर्म संन्यास की तालीम देता है। कोई कहता है कि अहिंसा परमोधर्मः तो दूसरा कहता है कि पालतू दूध देने वाले और खेती व सवारी के काम आने वाले जानवरों तक की बलि

(कुर्बानी) देने से हमारा इष्टदेव प्रसन्न होता है और हमको न्यामतें बताता है, कोई कहता है कि दूसरे मत का भी ऐसा ही आदर करो जैसा कि तुम अपने मत का आदर करते हो तो दूसरा कहता है कि अपने मत का पूरी तरह प्रचार करना चाहिये और उसके लिये जंग लड़ी जाय चाहे कत्ले आम किया जाय, चाहे दूसरों के धार्मिक स्थानों व साहित्य को नष्ट किया जाय, चाहे जीवितों की खाल उतरवानी पड़े और चाहे मासूम बच्चों को दीवार में चुना जाय। कोई कहता है परहेज की जिन्दगी बिताने से बहिश्त मिलती है तो दूसरा कहता है कि (Eat drink and be marry) यानि चाहे जो कुछ खाओ, चाहे जो कुछ पीओ चाहे जिसके साथ भोग विलास करो। कोई कहता है बैकुंठ में अमृतकुंड हैं और देवताओं का वास है तो दूसरा कहता है कि बैकुंठ यानि बहिश्त में पानी, दूध व शराब की नदियाँ बहती हैं, कोई कहता है, इस जीव की मुक्ति हो जाती है और दूसरा कहता कि नहीं जीव तो अमर है इसकी सामयिक मुक्ति होती है और उस दशा

में वह कुछ समय के लिये आनन्द भोगता रहता है। कोई कहते हैं यह सृष्टि अरबों बरस पहले रची गई थी और अभी कई अरब वर्ष तक इसे ऐसा ही रहना है तो दूसरा कहता है कि इस सृष्टि के नष्ट होने में यानि कयामत आने में अब थोड़े ही बरस बाकी हैं। कोई उस मालिक को आनन्द रूप मानता है तो दूसरा ज्योति (प्रकाश) रूप मानता है तो तीसरा इसको चैतन्य रूप मानता है। यह सम्भव हो सकता है कि जिस समय जो मत प्रचलित हुआ उस समय के देश काल और पात्र के अनुसार वह तालीम ठीक रही हो परन्तु आफत तो हम आज कल के दुनिया में रहने वाले लोगों की आई कि मनुष्य समाज को इन मत मतान्तरों ने सैकड़ों जगह बाँट दिया और एक मत वाला दूसरे मत वाले के खून का प्यासा बना हुआ है और आये दिन दंगे फसाद, आगजनी, लूटमार की घटनायें होती रहती हैं और कभी तो यह एक बहुत बड़ी जंग का रूप धारण कर लेती हैं। दूसरी आफत हम लोगों की यह आई हुई है कि हम अज्ञानी जीव किसकी बात

को मानें और किसकी न माने और नतीजा यह हुआ है कि संसार पथ भ्रष्ट हो गया है और होता जा रहा है अर्थात् मनुष्यता को छोड़ पशुता की ओर चला जा रहा है।

अब एक सवाल पैदा होता है कि आखिर इन मत मतान्तरों में इतना भेद या अन्तर क्यों हुआ और होता चला जा रहा है। मेरी समझ के मुताबिक इन मतों को चलाने वालों ने असलियत को न जान कर सिर्फ बुद्धि से मानकर ये सिद्धान्त कायम किये हैं। मानी हुई चीज गलत भी हो सकती है और सही भी। ये सिद्धान्त मतों के संचालकों ने काल के बहकावे के चक्कर में आकर कायम किये हैं।

१. काल क्या और क्या काल का चक्कर :— मालिके कुल ने जिस शक्ति को सृष्टि की रचना का काम दिया हुआ है उसको काल कहते हैं। काल अपनी रचना बिना जीव यानि सुरतों की मदद के पूरी तरह से नहीं रच सकता इसलिए वह जीवों को बहकाता रहता है कि वह किसी तरह से सृष्टि

की रचना से बाहर न चले जाँय और ऐसा करना वह अपना अधिकार समझता है। यह है काल और काल चक्कर जो हमारी बुद्धियों को नष्ट करता रहता है और इसी चक्कर में आ करके यह मत मतान्तरों के सिद्धान्त कायम किये गये हैं जो कि एक दूसरे के विपरीत ही नहीं बल्कि कट्टर विरोधी हैं। इसलिये इन सब मतों को संतों ने काल मत की संज्ञा दी है।

२. दयालमत :—दयालमत के वर्ग में सिर्फ वे ही मत मतान्तर आते हैं जो कि काल व माया के जाल में फंसी दुखी सुरतों (जीवों) को काल और माया के जाल से निकालकर जन्म मरण से रहित हो अपने घर जाने का सच्चा मार्ग यानि सत ज्ञान देते हैं। सत ज्ञान के बारे में विशेष जानकारी हासिल करनी हो तो कृपा कर इसी भाग के पुष्प नं० १८ (तीन प्रकार के ज्ञान) को पढ़ें।

—❋—

सूचना

संतमत लेखमाला (दूसरा भाग) अथवा
सुगम साधन का अनमोल अनुभव,
लिखा जा रहा है।

सूचना

जुलाई मास 1975 में मानवता मन्दिर, होशियारपुर में होने वाले विशेष सत्संग :—

1. मासिक सत्संग 20-7-75

2. गुरु पूर्णिमा 23-7-75

सैक्रेट्री :

मानवता मन्दिर,

होशियारपुर ।

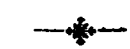

Regd. No. 26265/74

MANAV MANDIR P—Hsp—7.

ADDRES

To

From:

MANAVTA NDIR

SUTEHRI F

HOSHIAP